## मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ

मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण,
पर की मुझ में कुछ गन्ध नहीं।
मैं अरस, अरूपी, अस्पर्शी,
पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।।

मैं रंग-राग से भिन्न, भेद से,
भी मैं भिन्न निराला हूँ।
मैं हूँ अखण्ड, चैतन्यपिण्ड,
निज रस में रमने वाला हूँ।।

मैं ही मेरा कर्त्ता-धर्त्ता,
मुझ में पर का कुछ काम नहीं।
मैं मुझ में रहने वाला हूँ,
पर में मेरा विश्राम नहीं।।

मैं शुद्ध, बुद्ध, अविरुद्ध, एक
पर-परिणति से अप्रभावी हूँ।
आत्मानुभूति से प्राप्त तत्त्व,
मैं ज्ञानानन्दस्वभावी हूँ।।

**– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**

# चैतन्य चमत्कार

**– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल**

# चैतन्य चमत्कार

(स्व. पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी से डॉ. हुकमचन्द
भारिल्ल द्वारा लिए गये इन्टरव्यूओं का संकलन)

डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

प्रकाशक

**पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट**

ए-४, बापूनगर, जयपुर (राजस्थान) ३०२०१५

फोन : (०१४१) २७०५५८१, २७०७४५८

| | | |
|---|---|---|
| **प्रथम सात संस्करण** | : | ४१ हजार ६०० |
| (२२ फरवरी १९८१ से अद्यतन) | | |
| **आत्मधर्म** में सम्पादकीय के रूप में | : | ७ हजार |
| **युगपुरुष कानजी स्वामी पुस्तक में** | : | १८ हजार २०० |
| **अष्टम संस्करण** | : | ५ हजार |
| (३१ मार्च २००७, महावीर जयन्ती) | | |
| **योग** | : | **७१ हजार ८००** |

**मूल्य :** चार रुपये

मुद्रक :
**प्रिन्ट 'ओ' लैण्ड**
बाईस गोदाम,
जयपुर


## क्या/कहाँ


| विषय | पृष्ठ क्र. |
|---|---|
| १. चैतन्य चमत्कार | ५ |
| २. सम्यग्ज्ञानदीपिका | १४ |
| ३. अब हम क्या चर्चा करें ? | २८ |
| ४. हम तो उनके दासानुदास हैं | ३६ |
| ५. वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं | ४३ |
| ६. क्रमबद्धपर्याय | ५४ |


# प्रकाशकीय

( अष्टम संस्करण )

जिन-अध्यात्म जगत में आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी से आज कौन अपरिचित है ? इस युग में उनके द्वारा संचालित आध्यात्मिक क्रान्ति ने जहाँ एक ओर लाखों लोगों को जिन-अध्यात्म की ओर मोड़ा है, वहीं दूसरी ओर क्रियाकाण्डी जगत में खलबली भी कम नहीं हुई। उनके ही प्रबल पुरुषार्थ और पुण्य-प्रताप का यह परिणाम है कि आज गाँव-गाँव में आध्यात्मिक गोष्ठियाँ चलने लगी हैं और गली-गली में अध्यात्म की सूक्ष्म चर्चाएँ होने लगी हैं। उनके ही प्रताप से आचार्य कुन्दकुन्द का समयसार आज जन-जन की वस्तु बन गया है।

उनके जीवनकाल में ही उनके सम्बन्ध में भ्रान्त धारणाएँ फैली या जान-बूझकर फैलाई गईं, जिससे सम्पूर्ण जैन समाज आन्दोलित हो उठा। जब १९७६ में डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के हाथ आत्मधर्म (हिन्दी) का सम्पादन आया तो उन्होंने उन भ्रान्त धारणाओं के निराकरण के लिए श्री कानजी स्वामी से अनेक इन्टरव्यू लिए और उन्हें आत्मधर्म हिन्दी के सम्पादकीयों के रूप में प्रकाशित किया, जिनका प्रभाव समाज पर जादू जैसा हुआ। परिणामस्वरूप उनके सम्बन्ध में फैली भ्रान्त धारणाओं के बादल कुछ छट गये।

उक्त इन्टरव्यूज को 'चैतन्य चमत्कार' नाम से पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया गया, जो अब तक अखिल भारतीय जैन

युवा फैडरेशन के द्वारा सात संस्करणों के माध्यम से ४१ हजार ६०० की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुके हैं। ये इन्टरव्यू 'युगपुरुष श्री कानजी स्वामी' नामक पुस्तक में भी १८ हजार २०० की संख्या में तथा आत्मधर्म (हिन्दी) के सम्पादकीय में ७ हजार की संख्या में छप चुके हैं।

स्वामीजी के स्वर्गवास के बाद फिर वही भ्रान्त धारणाओं के बादल मंडरा रहे हैं। अत: उसके निराकरण की दृष्टि से यह अष्टम संस्करण ५ हजार की संख्या में पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा पुन: प्रकाशित किया जा रहा है। इसप्रकार कुल मिलाकर ७१ हजार ८०० की संख्या में जन-जन तक पहुँच चुकी है।

आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजी स्वामी और डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचन सी.डी. और डी. वी. डी. में हमारे यहाँ उपलब्ध हैं, जो अत्यन्त अल्प मूल्य में आपको प्राप्त हो सकते हैं। इसीप्रकार उक्त दोनों महानुभावों द्वारा प्रस्तुत सम्पूर्ण साहित्य भी अत्यल्प मूल्य पर उपलब्ध है।

यदि आप इस युग में अध्यात्म का रहस्य समझना चाहते हैं तो उपलब्ध सी. डी. को अवश्य सुनें और साहित्य को भी अवश्य पढ़ें।

हमें आशा है कि इस कृति के अध्ययन से सही स्थिति का ज्ञान होगा तथा उनकी भ्रान्तियाँ दूर होंगी। इसी आशा और विश्वास के साथ। **– ब्र. यशपाल जैन,** एम. ए.
प्रकाशन मंत्री

# चैतन्य चमत्कार

**पूज्य कानजी स्वामी से उनकी जन्म-जयन्ती के अवसर पर वैशाख शुक्ला द्वितीया, दिनांक १ मई, १९७६ को बम्बई में सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय सैकड़ों व्यक्तियों के बीच सम्पादक आत्मधर्म द्वारा लिया गया इन्टरव्यू जन-जन की जानकारी के लिए यहाँ प्रस्तुत है।**

**स्वामीजी के बारे में कुछ धारणाएँ आज समाज में प्रश्नों के रूप में उपस्थित हैं, जिनकी चर्चा सर्वत्र होती देखी जाती है। उन प्रश्नों के उत्तर, उन शंकाओं का समाधान स्वयं स्वामीजी के मुख से हो, यही उद्देश्य रहा है इस इन्टरव्यू का।**

**''हमारे पास तो चैतन्य का चमत्कार है, जादू की लकड़ी का नही।'' – यह उत्तर पूज्य कानजी स्वामी ने उस समय दिया, जब उनसे पूछा गया कि हमने सुना है कि आपके पास कोई जादू की लकड़ी का चमत्कार है। आप जिस पर उसे फेर देते हो, वह आपका भक्त हो**

**जाता है, निहाल हो जाता है, सम्पन्न हो जाता है।**

स्वामीजी ने अपनी बात को स्पष्ट करते हुए कहा – हमारे पास कोई जादू की लकड़ी नहीं है। हाथ में पसीना आता है, उससे शास्त्र के पृष्ठ खराब न हो जावें, इसलिए लकड़ी रखते हैं। हाथ की लकड़ी दिखाते हुए बोले –

''यह लकड़ी कोई जादू की लकड़ी है – यह लोगों का कोरा भ्रम है। इसी भ्रम के कारण एक बार तो कोई लकड़ी चुरा ले गया।''

''तो आप इस भ्रम को दूर क्यों नहीं करते ?''

यह पूछने पर सहज भाव से स्वामीजी कहने लगे – ''हमने तो कई बार चर्चा में और प्रवचनों के बीच भी कहा है। इससे अधिक हम क्या कर सकते हैं ?''

**प्रश्न :** यह बात ठीक है कि आपके पास न तो कोई जादू है और न उसका कोई प्रयोग ही आप करते हैं, पर जो व्यक्ति एक बार आपके पास आता है, आपके प्रवचनों को सुनता है, वह आपका हो जाता है; इसका क्या कारण है ?

**उत्तर :** हमारे पास आत्मा की बात है, दु:ख से छूटने की बात है, सच्चा सुख प्राप्त करने की बात है। सभी प्राणी सुख चाहते हैं और दु:ख से बचना चाहते हैं। अत: जो भी शान्त भाव से बिना पूर्वाग्रह के हमारी बात सुनता है, वह अवश्य प्रभावित होता है। हमारे पास तो वीतराग सर्वज्ञ प्रभु



की बात है, वही कहते हैं। प्रभावित होनेवाले अपनी पात्रता से प्रभावित होते हैं।

**प्रश्न :** लोग तो ऐसा भी कहते हैं कि वे लोग सम्पन्न भी हो जाते हैं ?

**उत्तर :** हो जाते होंगे, पर हमारे आशीर्वाद से नहीं होते। वे हमारे पास आते हैं, महीनों रहते हैं, तत्त्व की बात शान्ति से सुनते हैं। हो सकता है कि उन्हें पुण्य बंधता हो और सम्पन्न भी होते हों, पर उसमें हमारा किया कुछ नहीं। हम तो धन को धूल–मिट्टी कहते हैं। धन का मिल जाना कोई महत्त्व की बात तो है नहीं। महत्त्व की बात तो आत्मा का अनुभव है।

**प्रश्न :** आपको लोग गुरुदेव कहते हैं। क्या आप साधु हैं ? गुरु तो साधु को कहते हैं ?

**उत्तर :** साधु तो नग्न दिगम्बर छटवें–सातवें गुणस्थान की भूमिका में झूलते भावलिंगी वीतरागी सन्त ही होते हैं। हम तो सामान्य श्रावक हैं, साधु नहीं। **हम तो साधुओं के दासानुदास हैं।** अहा ! वीतरागी सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्र आदि मुनिवरों के स्मरण मात्र से हमारा रोमांच हो जाता है।

**प्रश्न :** तो फिर आपको लोग गुरुदेव क्यों कहते हैं ?

**उत्तर :** भाई ! गोपालदासजी बरैया को भी तो गुरु कहते थे। देव–शास्त्र–गुरु वाले गुरु तो पंच परमेष्ठी में आचार्य,

उपाध्याय, साधु ही हैं। हमसे लोग अध्यात्म सुनते हैं, सीखते हैं, सो गुरुदेव कहते हैं।

**प्रश्न :** तो आपको गुरुदेव विद्या-गुरु के अर्थ में कहा जाता है, देव-शास्त्र-गुरु के अर्थ में नहीं ?

**उत्तर :** हाँ, हाँ, यही बात है। भाई ! हम तो कई बार कहते हैं कि वस्त्रादि रखे और अपने को देव-शास्त्र-गुरु वाला गुरु माने, मनवावे, वह तो अज्ञानी है। अधिक हम क्या कहे ?

**प्रश्न :** अभी जब साधुओं की चर्चा आई तो आपने कुन्दकुन्द का, अमृतचन्द्र का नाम लिया, तो क्या आप अकेले कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्र को ही सच्चा साधु मानते हैं, प्रामाणिक मानते हैं, और आचार्यों को नहीं ?

**उत्तर :** कैसी बातें करते हो ? हम तो सभी वीतरागी सन्तों को मानते हैं। सिद्धान्तचक्रवर्ती नेमीचन्द्र, भूतबलि, पुष्पदन्त, समन्तभद्र, उमास्वामी, अकलंक, पद्मप्रभमलधारि देव, जयसेनाचार्य आदि सभी मुनिराज आचार्य भगवन्त पूज्य हैं, सम्माननीय हैं।

अरे भाई ! आचार्यों को ही क्या, हम तो पण्डित बनारसीदासजी, टोडरमलजी, जयचन्दजी, दौलतरामजी आदि महान पण्डितों के शास्त्रों को पूर्ण प्रामाणिक मानते हैं।

**प्रश्न :** मानते होंगे, पर आप पढ़ते तो समयसार ही हैं, अन्य ग्रन्थ नहीं ?



**उत्तर :** कौन कहता है ? हमने सभी शास्त्रों का अनेक बार स्वाध्याय किया है। दिगम्बर शास्त्रों का तो दोहन किया ही है, श्वेताम्बरों के भी लाखों श्लोक पढ़े हैं। समयसार में ही हमारी भक्ति अधिक है। उसका कारण तो यह है कि हमें वि. सं. १९७८ में समयसार हाथ लगा और हमने जब उसका अध्ययन किया तो हमारी आँखें खुल गईं, हमें लगा कि अशरीरी होने का तो यह शास्त्र है।

समयसार ने हमारा जीवन बदल डाला, अत: उसके प्रति हमारी विशेष भक्ति होना स्वाभाविक है। समयसार १७ बार तो हमने सभा में पढ़ा है, वैसे तो सैकड़ों बार उसका दोहन किया है।

भाई ! अपूर्व शास्त्र है, अपूर्व है उसकी महिमा ! हम कहाँ तक गायें, जितनी कहें थोड़ी है।

**प्रश्न :** हमारा कहना तो यह है कि आपने स्वाध्याय चाहे सैकड़ों शास्त्रों का किया हो, पर सभा में तो समयसार ही पढ़ते हैं, अन्य ग्रन्थ नहीं।

**उत्तर :** कौन कहता है ? हमने सभा में प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, अष्टपाहुड़ .....

बीच में ही टोकते हुए जब मैंने कहा कि - ये सब ग्रन्थ तो आचार्य कुन्दकुन्द के ही हैं।

तब रोकते हुए बोले - सुनो तो। सभा में धवला भी

बांचा है, पहला भाग आद्योपान्त। इसके अतिरिक्त पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय, पद्मनन्दिपंचविंशतिका, मोक्षमार्ग प्रकाशक, कार्तिकेयानुप्रेक्षा, समाधिशतक, तत्त्वार्थसार, बृहद् द्रव्यसंग्रह, इष्टोपदेश, भक्तामर स्तोत्र, विषापहार स्तोत्र आदि अनेक ग्रन्थों पर प्रवचन किये हैं। अभी मई में आत्मधर्म में ३३ ग्रन्थों की तो लिस्ट दी गई है, देखना। और भी पढ़े हैं।

दिगम्बराचार्यों के सभी ग्रन्थ महान हैं। समस्त शास्त्रों का तात्पर्य एकमात्र वीतरागता है।

**प्रश्न :** आप पुण्य भाव को हेय कहते हैं, तो क्या पूजा-पाठ, दया-दान आदि पुण्य कार्य नहीं करना चाहिए ?

आपके भगत तो पूजा-पाठ करते नहीं होंगे, दान देते नहीं होंगे ?

**उत्तर :** कौन कहता है ? जैसी पूजा सोनगढ़ में होती है, वैसी और जगह देखी भी नहीं होगी। कई विधान-महोत्सव हो चुके, पंचकल्याणक, वेदी प्रतिष्ठाएँ अनेक हुई हैं, जिनकी सूची मई के अंक में दी गई है।

दान ! दान की क्या बात करते हो !! बिना कहे ही यहाँ वर्षा-सी होती है, देखते नहीं। हम पूजा-पाठ, दया-दान थोड़े ही छुड़ाते हैं, उसे धर्म मानना छुड़ाते हैं। वह धर्म है भी नहीं।

**प्रश्न :** यदि धर्म नहीं तो फिर क्यों दें दान? क्यों करें पूजा ?



**उत्तर :** धर्मी जीव को देव-पूजा एवं दानादि देने का भाव आता ही है, आये बिना नहीं रहता। जब-जब शुद्धोपयोग न हो तो शुभोपयोग तो रहेगा ही।

आचार्य पद्मनन्दी ने तो पद्मनन्दिपंचविंशतिका में यहाँ तक लिखा है कि - कौआ भी जब खुरचन को प्राप्त करता है तब साथी कौओं को बुलाकर खाता है, अकेला नहीं खाता। इसीप्रकार जो व्यक्ति प्राप्त धन का उपयोग सिर्फ अपने लिए करता है, साधर्मी भाइयों और धर्म कार्यों में खर्च नहीं करता, वह तो कौए से भी गया बीता है।

जो धन प्राप्त हुआ है, वह तो पूर्व पुण्य का फल है। वर्तमान कमाने के अशुभ भाव रूप पुरुषार्थ का फल नहीं है और वह पुण्य भी जब बंधा था, तब तेरी शान्ति जली थी, अत: यह धन तो शान्ति का घातक है, कोई अच्छी चीज नहीं है।

**उत्तर :** आप तो आत्मा की ही बात करते हैं। अपने जो तीर्थ हैं, उनकी यात्रा, वंदना, सुरक्षा आदि भी तो गृहस्थों के कर्त्तव्य हैं ?

**उत्तर :** क्यों नहीं ! हमने भी सारे भारत की तीन-तीन बार यात्राएँ की हैं। दो बार सारे भारत की, तीसरी बार अकेले दक्षिण भारत की। उनकी सुरक्षा भी आवश्यक है।

**प्रश्न :** आपकी बातें पूर्णत: सच्ची हैं और अच्छी भी हैं, फिर लोग मानते क्यों नहीं ?

**उत्तर :** कौन कहता है, नहीं मानते ? नहीं मानते तो ये हजारों लोग बम्बई जैसी मायानगरी में छब्बीस-छब्बीस दिन तक लगातार भरी दोपहरी में क्यों भागे आते हैं, समय के पहिले। हमारी बात तो लाखों लोग सुनते हैं, समझते हैं, पढ़ते हैं, मानते भी हैं। यह तो तत्त्वप्रचार का काल पका है, तुम जैसे लोग पक गए हैं।

**प्रश्न :** मेरा आशय यह था कि सब लोग क्यों नहीं मानते ?

**उत्तर :** सब तो भगवान की भी नहीं मानते थे। यदि मान जाते तो संसार में ही क्यों रहते। भाई ! सुनने वाले की भी तो पात्रता होती है। मानना, नहीं मानना, सुनने वाले की पात्रता पर निर्भर करता है।

जो मानते हैं वे अपने कारण और जो नहीं मानते वे भी अपने कारण। दोनों में ही हमारा क्या है ?

**प्रश्न :** आपने कहा कि हजारों लोग सुनते हैं। आत्मा की इतनी सूक्ष्म बात बीस-बीस हजार जनता की समझ में क्या आती होगी ?

**उत्तर :** क्यों नहीं आती होगी ? सभी आत्मा हैं, भगवान हैं। जब आठ वर्ष की बालिका को सम्यग्दर्शन हो सकता है तो.....। न सही पूरा, कुछ न कुछ तो आता ही होगा, तभी तो प्रतिदिन आते हैं। फिर हमारी भाषा तो सादी है,



भाव अवश्य कठिन हैं, पर इसके समझे बिना कल्याण भी तो नहीं। हमको क्या ? हमारे पास तो यही बात है और लाएँ भी तो कहाँ से। संसार से छूटने की बात तो यही है, इसे जाने बिना कल्याण नहीं।

**प्रश्न :** समाज में सर्वत्र दो दल हो गये हैं। यदि थोड़े आप झुकें और थोड़े वे तो समझौता हो सकता है।

**उत्तर :** भाई धर्म में समझ का काम है, समझौते का नहीं। धर्म तो वस्तु के स्वभाव को कहते हें। वस्तु का स्वभाव तो जो है सो है, उसे समझना है, उसमें समझौते की गुँजाइश कहाँ है ? हम तो किसी से लड़ते ही नहीं, फिर समझौते की बात कहाँ है ? आत्मा को समझना ही सच्चा धर्म है।

''यह प्रश्न जो आपसे किए हैं और उनके उत्तर जो आपने दिए हैं, उन्हें जन-जन की जानकारी हेतु आत्मधर्म में दिया जाएगा।''

मेरे यह कहने पर कहने लगे - ''हम इसमें कुछ नहीं जानते, तुम्हारी बात तुम जानो। हमसे तो तुमने जो पूछा उसके बारे में जो कुछ कहना था, कह दिया। हमारे पास तो अकेले में भी यही बात है और खुली सभा में भी यही बात है।

क्या रखा है इन सब बातों में ? आत्मा का अनुभव सबसे बड़ी चीज है। मनुष्य भव की सार्थकता आत्मानुभव में ही है।'' ●

# सम्यग्ज्ञानदीपिका

**बहुचर्चित पुस्तक 'सम्यग्ज्ञानदीपिका' को लेकर कतिपय निहित स्वार्थों द्वारा समाज में अनेक भ्रम फैलाए जा रहे हैं। उनके समुचित समाधान हेतु आत्मधर्म के सम्पादक द्वारा पूज्य श्री कानजी स्वामी से सोनगढ़ में दिनांक १६.१०.७६ को लिया गया एक इन्टरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।**

''कौन किसका विरोध करता है, अज्ञानवश सब अपना ही विरोध करते हैं।'' उक्त मार्मिक शब्द पूज्य श्री कानजी स्वामी ने तब कहे जब उनसे पूछा गया कि सम्यग्ज्ञानदीपिका को लेकर कुछ लोग आपका बहुत विरोध कर रहे हैं। बात को आगे बढ़ाते हुए उन्होंने कहा – भाई! मैं तो ज्ञानानन्द स्वभावी एक अनादि-अनन्त ध्रुव आत्मा हूँ। मुझे वे जानते ही कहाँ हैं, यदि वे मुझे वास्तविक रूप से जान लें तो विरोध ही न करेंगे।

विरोध करनेवाले अपनी पर्याय में अपनी आत्मा का ही विरोध कर रहे हैं। इस अमूल्य मनुष्य जीवन को आत्महित

* 'आत्मधर्म', नवम्बर १९७६ से साभार उद्धृत



में न लगाकर बैर-विरोध में लगाना, यह तो मनुष्य जीवन की सबसे बड़ी हार है। हम तो किसी से बैर-विरोध रखते नहीं। कोई रखो तो रखो, उसमें हम क्या कर सकते हैं?

हमारी दृष्टि में तो सभी आत्माएँ समान हैं, सभी भगवानस्वरूप हैं। पर्याय में जो अल्पकाल की भूल है, वह भी अल्पकाल में निकल जानेवाली है। और भूल भरी आत्मा तो करुणा की पात्र है, न कि विरोध की पात्र।

अत: हम तो किसी से बैर-विरोध रखते नहीं।

जब उनकी आध्यात्मिक विभोरता को भंग करते हुए मैंने कहा – विरोध तो सम्यग्ज्ञानदीपिका को लेकर है, तब वे बोले – सम्यग्ज्ञानदीपिका को लेकर है तो हमसे क्यों कहते हो? क्षुल्लक धर्मदासजी से कहें। वह उन्होंने बनाई है, मैंने तो बनाई नहीं।

**प्रश्न :** आपने बनाई तो नहीं, पर छपाई तो है?

**उत्तर :** वह तो हमारे जन्म से ढाई माह पूर्व स्वयं क्षुल्लक धर्मदासजी ने छपाई थी। ८७ वर्ष पूर्व पण्डित श्रीधर शिवलालजी के ज्ञानसागर छापखाना, बंबई में वि. सं. १९४६ माघ शुक्ला १५ मंगलवार को सर्वप्रथम छपी थी, और हमारा जन्म वि. सं. १९४७ (गुजराती १९४६) वैशाख शुक्ला दोज को हुआ था। यह पुस्तक हमें वि. सं. १९७८ में मिली जो आज भी

हमारे पास मौजूद है तथा सहारनपुर, भोपाल, खुरई आदि अनेक स्थानों के जिन-मन्दिरों में विद्यमान है।

जब उन्होंने तत्काल उक्त पुस्तक मुझे दिखाई, तब मैंने उसे अच्छी तरह देखा। उसके अंत में निम्नानुसार लिखा पाया -

''येह सम्यग्ज्ञानदीपिका नाम की पुस्तक हम बणाई है इसमें मूल हेतु मेरा येह है कि स्वयं ज्ञानमयी जीव जिस स्वभाव सै तन्मयि है उसी स्वभाव की स्वभावना जीव सै तन्मयि अचल होहु येही हेतु अंत:करण मै धारण करिकै येह पुस्तक बणाई है, ५०० (पाँच सौ) पुस्तक छापाके द्वारा प्रसिद्ध होणे की सहायता के अर्थ रुपया १०० (येक सौ) तो जिल्हा स्याहाबाद मुकाम आरा ठिकाणौं मखनलालजी की कोठी में बाबू विमलदासजी की विधवा हमारी चेली द्रौपदी ने दिया है।''

इसमें उन्होंने पुस्तक बनाने का उद्देश्य तो स्पष्ट किया ही है। साथ ही पुस्तक छपाने में सहायता करने वालों की चर्चा तक कर दी है।

जब मैंने बात को आगे बढ़ाते हुए कहा - न सही पहली बार, दूसरी बार तो आपने छपाई। तब वे बोले - दूसरी बार भी उन्होंने उसी प्रेस में उसके दो वर्ष बाद ही वि. सं. १९४८ में ५०० प्रतियाँ छपाई थीं।

**प्रश्न :** तीसरी बार सही।



**उत्तर :** तीसरी बार भी आज से ४२ वर्ष पूर्व सन् १९३४ में अमरावती से हीरालाल बापूजी काले तथा सिंघई श्री कुन्दनलालजी परवार ने छपाई थी जिसकी भूमिका ब्रह्मचारी शीतलप्रसादजी ने लिखी है।

उक्त प्रति भी तत्काल उन्होंने मेरे सामने रख दी। मैंने ब्र. शीतलप्रसादजी द्वारा लिखित भूमिका देखी। उसमें लिखा था -

''मैंने इस पुन: मुद्रित ग्रन्थ को आद्योपान्त पढ़ा। यह ग्रन्थ आत्मज्ञान के मनन के लिए शुद्ध आत्मा की पृथक् पहचान के लिए बहुत उपयोगी है। इस ग्रन्थ में सब वर्णन स्याद्वाद लक्षणमयी जिनवाणी के आधार से अनेकान्त स्वरूप है तथा जो अपूर्व अध्यात्मकथन श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने श्री समयसार ग्रन्थ में किया है उसी का इसमें निचोड़ है।....

..... एकान्त में मनन करने के लिए व अन्तरंग में आत्मज्योति के देखने के लिए यह सम्यग्ज्ञानदीपिका दीपक के समान बार-बार प्रकाश करने योग्य है, पढ़ने व मनन करने योग्य है। इस पुस्तक में धर्मदासजी महाराज ने सैकड़ों लौकिक दृष्टान्तों को देकर आत्मा को और उसके सम्यग्ज्ञानमयी प्रकाश को तन-मन-वचन व उनकी क्रियाओं से, द्रव्यकर्म, भावकर्म व नोकर्म से व सर्व जगत के प्रपंच से व पुद्गलादि पाँच द्रव्यों से भिन्न दिखाया है, बड़ा ही

उपकार किया है। हर एक अध्यात्म प्रेमी जैन व अजैनों को यह ग्रन्थ उपकारी है। हर एक आत्मरस पिपासु की पिपासा इस ग्रन्थ घट में भरे हुए अमृत के पान से शान्त होगी।''

अमरावती, २९.८.१९३४ ब्र. शीतल

मैं पढ़ ही रहा था कि मेरा ध्यान आकर्षित करते हुए गुरुदेव बोले कि ये क्षुल्लक धर्मदासजी जयपुर के पास सवाई माधोपुर तालुका में बौंली गाँव के रहने वाले थे। खण्डेलवाल जाति के चूड़ीवाल गदिया थे। पिता का नाम श्रीलालजी व माता का नाम ज्वालाबाई था और इनका गृहस्थ अवस्था का नाम धन्नालाल था। यह उन्होंने अपनी 'स्वात्मानुभवमनन' नामक पुस्तक की भूमिका में लिखा है।

इनकी ये पुस्तकें बहुत दिनों से पठन-पाठन की वस्तु बन रही हैं। तीन-तीन बार छप चुकी हैं और सब मन्दिरों में मौजूद हैं।

**प्रश्न :** होंगी, इससे क्या ? आपने चौथी बार तो छपाई ?

**उत्तर :** हम तो पत्र भी नहीं लिखते। छपाने-वपाने का काम हमारा नहीं।

**प्रश्न :** यह तो ठीक, इसमें क्या। आपने न सही, आपके स्वाध्याय मन्दिर ट्रस्ट ने तो छपाई ?

**उत्तर :** उसने भी गुजराती छपाई थी। हिन्दी में तो भावनगर मुमुक्षु मण्डल से सात-आठ वर्ष पहले छपी थी।



**प्रश्न :** किसी भी मुमुक्षु मण्डल से छपी हो, हम तो वही समझते हैं कि आपने छपाई ?

**उत्तर :** यह अच्छा है, ऐसा क्यों ?

**प्रश्न :** इसलिए, क्योंकि सभी मुमुक्षु मण्डल हैं तो आखिर आपके ही। आपकी आज्ञानुसार ही तो कार्य करते हैं।

**उत्तर :** अच्छी बात कही। मुमुक्षु मण्डल हमारे कैसे ? हम तो किसी को कोई आज्ञा नहीं देते। क्या तुम यह समझते हो कि सब हम से पूछ-पूछकर कार्य करते हैं ? अरे ! हमें कहाँ इतनी फुर्सत कि इन झंझटों में फँसें ? सारे हिन्दुस्तान के सैकड़ों मुमुक्षु मण्डलों की बात तो दूर, हम तो यहाँ रहकर भी ट्रस्ट का भी कुछ नहीं देखते। ये जानें रामजी भाई आदि।

**प्रश्न :** माना कि भावनगर मुमुक्षु मण्डल ने आपसे पूछकर नहीं छपाई, पर जब आपको पता चला था तब आपको मना तो करना था। यदि आप मना करते ..... ?

**उत्तर :** हम तो इन बातों में नहीं पड़ते। फिर हम क्यों मना करते ? यह कोई खराब पुस्तक तो है नहीं। क्षुल्लकजी ने उसमें आत्मानुभव की बात अनेक उदाहरणों द्वारा समझाई है। वे तो सीधे सज्जन आध्यात्मिक पुरुष थे, उन्होंने तो अपनी सीधी-सादी भाषा में अनुभव की महिमा बताई है। वे क्या जानते थे कि भविष्य में ऐसे लोग भी निकलेंगे कि उनके द्वारा प्रतिपादित सीधे सच्चे भावों को तोड़-मरोड़ कर इस तरह प्रस्तुत करेंगे।

**प्रश्न :** कुछ लोग तो कहते हैं कि उसमें व्यभिचार का पोषण है ?

**उत्तर :** जिन्हें परलोक का भी भय नहीं है, उन्हें कौन समझाए ? जरा विचार तो करो, जो स्वयं ब्रह्मचारी क्षुल्लक हो, क्या वे व्यभिचार का पोषण करेंगे ? उन्हें इसमें क्या लाभ था ? यह तो इन सब की बुद्धि की बलिहारी है, जो इतनी अच्छी पुस्तक में से यह भाव निकाला। और हम भी तो बाल ब्रह्मचारी हैं। ७८ वर्ष की उमर है, तथा यहाँ के आध्यात्मिक वातावरण से प्रभावित होकर ६४ सम्पन्न घरानों की पढ़ी-लिखी नई उमर की बहनें आजीवन ब्रह्मचर्य लेकर यहाँ रहती हैं। अनेक भाइयों ने भी आजीवन ब्रह्मचर्य लिया। अधिक क्या कहें ? अनेक दम्पत्ति भी यहाँ ब्रह्मचर्य लेकर रहते हैं और तत्त्व अभ्यास करते हैं।

जरा विचार तो करो जो क्षुल्लक धर्मदासजी उसी सम्यग्ज्ञानदीपिका में पृष्ठ नं. ५२ पर यह लिख रहे हैं कि –

''जैसे कोहूऽस्त्री अपणा स्वभर्तार कूं त्यजकरिकै अन्य पुरुष की सेवा रमण आदि कर्ती है सोऽस्त्री व्यवचारिणी मिथ्यात्णी है; तैसे ही कोहू अपणा आपमै आपमयि स्वसम्यक्-ज्ञानमयि देव कूं त्यज करिकै अज्ञानमयि देव की सेवा भक्ति मै लीन है सो मिथ्याती है।''



वे व्यभिचार का पोषण कैसे कर सकते हैं ?

**प्रश्न :** पर उसमें एक जगह तो स्पष्ट ही व्यभिचार का पोषण किया है ?

**उत्तर :** तुमने पढ़ा है ? निकालो, देखो क्या लिखा है ?

जब मैंने सम्यग्ज्ञानदीपिका की बहुचर्चित पंक्तियाँ इसप्रकार पढ़ीं –

''जैसे जिस स्त्री का शिर के ऊपर भरतार है स्यात् सो स्त्री परपुरुष का निमित्त सै गर्भ बी धारण करै तो ताकूं दोष लागते नाहीं।''

तब वे कहने लगे – पूरा तो पढ़ो अकेला दृष्टान्त क्यों पढ़ते हो ? साथ में द्राष्टान्त भी पढ़ो। तुम तो विद्वान हो, इतना भी नहीं जानते कि जो वाक्य 'जैसे' से आरम्भ होता है, वह 'वैसे' बिना समाप्त नहीं होता।

क्षुल्लक धर्मदासजी ने सम्यग्ज्ञानदीपिका 'स्त्रीचरित्र' समझाने को नहीं बनाई थी। उन्होंने तो आत्मा का अनुभव कैसे हो और आत्मानुभवी की दशा कैसी होती है, बताने के लिए इसे बनाया है। स्त्री का तो मात्र दृष्टान्त दिया है, सिद्धान्त तो आगे है, उसे पढ़ो।

जब मैंने आगे इसप्रकार पढ़ा कि –

''तैसे ही किसी पुरुष का मस्तक सै तन्मयि मस्तक के

ऊपर स्वसम्यक्ज्ञानमयि परब्रह्म परमात्मा है स्यात् सो पुरुष परकर्म वसात् दोष बी धारण करै तो तापुरुष कूं दोष लागते नाहीं। बड़े का शरण लेणे का ये ही फल है।''

तब वे कहने लगे – देखो वे तो आत्मानुभव की महिमा बता रहे हैं। इसमें व्यभिचार का पोषण कैसे हो गया ?

**प्रश्न :** आपने कहा वह बात तो ठीक है, पर ऐसा खोटा दृष्टान्त भी क्यों दिया ?

**उत्तर :** लो, अब उन्होंने ऐसा दृष्टान्त भी क्यों दिया – यह भी मैं बताऊँ। फिर दृष्टान्त में भी खोट कहाँ है ? खोट तो दोष देखने वालों की नजर में है।

**प्रश्न :** साफ लिखा है 'दोष लागते नाहीं।'

**उत्तर :** 'दोष लागते नाहीं' का अर्थ है 'कोई दोष देवै नाहीं' अर्थात् दुनियाँ में उसे कोई दोष नहीं देता, उसकी बदनामी नहीं होती। इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह दोषी नहीं है। पर–पुरुष से रमण करने वाली तो पापी है ही, पर उसका पाप खुलता नहीं है, बस बात इतनी सी है, क्योंकि उसका पति विद्यमान है।

तथा ध्यान से देखो उसमें 'स्यात्' शब्द पड़ा है, जिसका अर्थ कदाचित् होता है अर्थात् आशय यह है कि उसकी



भावना पर–पुरुष से रमण करने की नहीं है, पर कदाचित् प्रसंगवश बलात्कार आदि के कारण गर्भ भी रह जाए तो कोई उसे दोष नहीं देता। 'बड़े की शरण लेने का यही फल है' का आशय पति की उपस्थिति से है।

**प्रश्न :** 'दोष लागते नाहीं' का अर्थ 'दोष देवै नाहीं' आपने कैसे किया ?

**उत्तर :** हमने किया नहीं, ऐसा ही अर्थ है। क्षुल्लक धर्मदासजी की इसके एक वर्ष पहले उनके द्वारा ही बनाई गई पुस्तक 'स्वात्मानुभव मनन एवं भाषा वाक्यावली' में भी यह दृष्टान्त दिया गया है। दृष्टान्त हूबहू है, पर उसमें 'लागते नाहीं' की जगह पर 'देवै नहीं' लिखा है। इससे प्रतीत होता है कि उनका आशय 'लागते नाहीं' से 'देवै नाहीं' का ही है।

उक्त पुस्तक भी मुझे दिखाते हुए कहा, लो देखो। मैंने देखा तो 'भाषा वाक्यावली' पृष्ठ चार पर इस प्रकार लिखा था –

''जैसे जिस स्त्री का शिर के ऊपर भरतार है स्यात् पर पुरुष का निमित्त सैं वा स्त्री गर्भ बी धारण करै तो बी उसकूं कोई दोष देवै नाहीं। तैसे ही जिसके मस्तक ऊपर अरिहंत गुरु है वो पर पदार्थ के निमित्त सैं कोई दोष बी धारण करैगो तो उनकूं दोष नाहीं लागै। बड़े का शरण लेणे का ये ही फल है।''

मैं उक्त पंक्तियाँ पढ़ ही रहा था कि अत्यन्त भावुक होते

हुए गुरुदेव बोले कि क्षुल्लक धर्मदासजी ने अपने ग्रन्थों में बड़े ही मर्म की बातें लिखी हैं। उनकी भाषा जरूर सादी है, पर भाव गम्भीर है; किन्तु ऐसा नहीं कि समझ में ही नहीं आए। समझने की कोशिश करें तो सब समझ में आ सकता है। पर जिन्हें समझना ही नहीं, लड़ना है; उन्हें कौन समझाए?

**प्रश्न :** ऐसा न भी लिखते तो क्या हो जाता ?

**उत्तर :** उसका उत्तर तो क्षुल्लकजी ही दे सकते हैं।

**प्रश्न :** ठीक है, तो आप इसे सम्यग्ज्ञानदीपिका में से निकलवा दीजिए ?

**उत्तर :** यह काम हमारा नहीं है। किसी आचार्य या विद्वान् के शास्त्र में कुछ परिवर्तन करना हम उचित नहीं मानते। और किसी को अधिकार भी क्या किसी शास्त्र में से कुछ निकालने का ? इसप्रकार के उदाहरण तो अनेक शास्त्रों में आते हैं। कहाँ-कहाँ से क्या-क्या निकालोगे ?

अरे भाई ! ज्ञानियों के कथन का मर्म समझना पड़ेगा, उसमें बदला-बदली से काम नहीं चलेगा। और दृष्टान्त तो एकदेश होता है, उसे सर्वांश घटित नहीं करना चाहिए। तथा दृष्टान्त किसी सिद्धान्त को समझाने के लिए दिया जाता है; अत: उसके द्वारा जो सिद्धान्त समझाया गया हो, उसे समझने की कोशिश करना चाहिए। दृष्टान्तों में नहीं उलझना चाहिए।



**'समयसार कलश'** के १५० वें कलश में लिखा है - **'ज्ञानिन् भुंक्ष्व परापराधजनितो नास्तीह बंधस्तव।'** - हे ज्ञानी ! तू कर्म के उदयजनित उपभोग को भोग। तेरे पर के अपराध कर उत्पन्न हुआ ऐसा बंध नहीं है।

तो क्या समयसार में से उक्त पंक्तियाँ भी हटा दी जाएँ। भाई ! उनका मर्म समझने की कोशिश करना चाहिए।

पण्डित जयचन्दजी छाबड़ा ने उक्त पंक्ति का उक्त अर्थ लिखते हुए भी भावार्थ में स्पष्ट लिखा कि - यह बात भोग की प्रेरणा देने के लिए नहीं, बल्कि परद्रव्य से अपना बुरा मानने की शंका मिटाने के लिए कही है।

इसी तरह का 'ज्ञानवन्त के भोग निर्जरा हेतु हैं' वाला कथन है। इसमें भोगों को निर्जरा का कारण बताना उद्देश्य नहीं है, बल्कि ज्ञान की महिमा बताना है।

पण्डित दौलतरामजी ने 'छहढाला' में ज्ञानी के वात्सल्यभाव की उपमा नगर-नारी (वेश्या) के प्यार से दी है। 'प्रमेयरत्नमाला' में ज्ञान, सुख और वीर्य की एकसाथ एकत्र उपस्थिति की सिद्धि के लिए - **'यून: कान्ता समागमे'** लिखा है, अर्थात् स्त्री-पुरुष के समागम का उदाहरण दिया है।

आचार्य अकलंकदेव ने 'राजवार्तिक' में ज्ञान होते ही बंध-निरोध सिद्ध करने के लिए माँ और बेटा के समागम का

उदाहरण दिया है। समयसार की 'आत्मख्याति टीका' में आस्रव को अशरण सिद्ध करने के लिए भोगकाल में वीर्यमोक्षण का उदाहरण दिया है। और भी सैकड़ों इस प्रकार के कथन जिनागम में उदाहरण के रूप में मिल जावेंगे।

कहाँ-कहाँ से हटाओगे, क्या-क्या हटाओगे ?

**प्रश्न :** लोग तो कहते हैं कि आपने शास्त्रों को बहुत कुछ बदल दिया है, फिर इसे बदलने में क्या है ?

**उत्तर :** लोगों के कहने की हम क्या कहें, वे तो न जाने क्या-क्या कहते हैं ? हमने तो कहीं भी, कुछ भी नहीं बदला है। अपने को ही बदला है और दिगम्बर जिनवाणी के अनुसार अपने को, अपनी मान्यता को बनाया है।

**प्रश्न :** पहले जो आपसे बम्बई में इन्टरव्यू लिया था और जुलाई के आत्मधर्म में दिया था, उसका लोगों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा है। कुछ लोगों ने जो समाज में आपके बारे में भ्रम फैला रखे थे, वे काफी दूर हो गए हैं। इस सम्बन्ध में मेरे पास सैकड़ों पत्र आए हैं, कुछ तो आत्मधर्म में पाठकों के पत्रों के रूप में प्रकाशित भी किए हैं। लोगों का आग्रह है कि इसप्रकार के इन्टरव्यू यदि समय-समय पर आप देते रहें और वे विभिन्न पत्रों में प्रकाशित होते रहें तो बहुत से भ्रम साफ होते रहें।

**उत्तर :** भाई ! हम तो इन्टरव्यू-विन्टरव्यू कुछ जानते



नहीं और न हम किसी से प्रश्नोत्तर के चक्कर में ही पड़ते हैं। हम तो अपनी आत्मा की आराधना को ही सब कुछ समझते हैं। तुमने प्रेम से जिज्ञासापूर्वक पूछा था सो उस समय जो कुछ याद था सो कह दिया, अभी पूछा सो अभी कह दिया।

आत्मधर्म में या और किसी अखबार में छपाना-वपाना हमारा काम नहीं। अखबारों की बात अखबारवाले जानें।

**प्रश्न :** आत्मधर्म तो आपका ही पत्र है। उसमें तो....

**उत्तर :** हमारा क्या? हाँ, हमारी कही तत्त्वचर्चा उसमें छपती है, पर क्या उसे हम देखते हैं ? आप जानें, रामजी भाई जानें।

**प्रश्न :** यह इन्टरव्यू भी आत्मधर्म में छापना चाहते हैं ?

**उत्तर :** कह दिया न कि हमें क्या ? छापना-छपाना तुम्हारा काम है। जो तुम जानो सो करो। हमें तो जो कहना था सो कह दिया।

पण्डितजी ! सही बात तो यह है कि लोक-संग्रह में पड़ना ही क्यों ? यह महादुर्लभ मनुष्य भव और परम सत्य दिगम्बर धर्म प्राप्त हुआ है तो इसे यों ही विकल्पजाल में उलझे रहकर गँवा देना उचित नहीं है। इसमें समय रहते आत्मा का अनुभव प्राप्त कर लेना और उसमें ही जमे रहना कर्त्तव्य है और तो सब कुछ ठीक है, उसमें क्या रखा है ?

ज्यों ज्यों जे जे योग्य छे, तेहो समजवुं तेह।
त्याँ त्याँ ते ते आचरे, आत्मार्थी जन एह ।।

**– श्रीमद् राजचन्द्र**

# अब हम क्या चर्चा करें ?

**''स्वामीजी किसी से कोई चर्चा नहीं करते, वे किसी की बात भी नहीं सुनते, अपनी ही कहे जाते हैं।'' - इसप्रकार की चर्चा आज बुद्धिपूर्वक जोरों पर चलाई जा रही है।**

**उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचे, इस पवित्र उद्देश्य से सम्पादक आत्मधर्म द्वारा दिनांक २७.६.७७ को सोनगढ़ में स्वामीजी से लिया गया इन्टरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।**

''अब हम क्या चर्चा करें ?'' उक्त शब्द पूज्य कानजी स्वामी ने तब कहे तब उनसे कहा गया कि आपसे कुछ लोग चर्चा करना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि आप जो प्रतिपादन करते हैं, उसके सम्बन्ध में उभयपक्षीय चर्चा करके सत्यासत्य का निर्णय किया जाय।

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए स्वामीजी बोले -

''भाई ! अब हम किसी से क्या चर्चा करें ? हमने तो



कभी किसी से वाद-विवाद किया ही नहीं। २२ की उम्र में घर छोड़ा था, आज ६६ वर्ष होने को आए। २३ वर्ष स्थानकवासी सम्प्रदाय में रहे, ४३ वर्ष दिगम्बर धर्म स्वीकार किए हो गए। आज तक तो किसी से विवाद किया नहीं। अब...''

बीच में ही टोकते हुए जब मैंने कहा - ''इसमें क्या है ? यदि अब तक नहीं किया जो न सही, पर यही चर्चा करने से तत्त्व का सही निर्णय हो जावे तो चर्चा करने में क्या हर्ज है?''

तब अत्यन्त गम्भीरता से बोले - ''तत्त्वनिर्णय वाद-विवाद से नहीं होता। तत्त्वनिर्णय दिगम्बर जिनवाणी के अध्ययन, मनन, चिन्तन एवं आत्मा के अनुभव से होता है। कविवर पण्डित बनारसीदासजी ने कहा है न -

**सद्गुरु कहें सहज का धंधा, वाद-विवाद करे सो अंधा।**
**खोजी जीवे वादी मरे, ऐसी सांची कहावत है।।**[१]

नियमसार परमागम में आचार्य कुन्दकुन्द भी कहते हैं -

**णाणाजीवा णाणाकम्मं णाणाविहं हवे लद्धी।**
**तम्हा वयणविवादं सगपरसमएहिं वज्जिज्जो।।१५६।।**

जगत में नाना प्रकार के जीव हैं, उनकी नाना प्रकार की लब्धियाँ हैं और उनके नाना प्रकार के कर्म हैं; इसलिए चाहे वह स्वमत का हो या परमत का, किसी के साथ भी

१. बनारसी विलास, पृष्ठ : २०३

वचन-विवाद नहीं करना चाहिए।

वाद-विवाद से पार पड़ने वाली नहीं है। यह तो हम पहिले से ही जानते थे। अत: हम तो सदा इससे दूर ही रहे, वाद-विवाद में कभी पड़े ही नहीं।''

जब वे रुके तो मैंने तत्काल कहा -

''प्रश्न वाद-विवाद का नहीं, चर्चा करने का है। वाद-विवाद में मत पड़िये। कौन कहता है कि आप वाद-विवाद में पड़िये ? पर आप तत्त्वचर्चा से क्यों इन्कार करते हैं ?''

''चर्चा तो यहाँ प्रतिदिन होती है, शाम को ४५ मिनिट। पर जिस तरह की चर्चा की लोग बात करते हैं, वह तत्त्व चर्चा नहीं, वह वीतराग चर्चा नहीं; वह तो वाद-विवाद ही है। वे लोग बात तो चर्चा की करते हैं और करना चाहते हैं वाद-विवाद।''

वे कह ही रहे थे कि मैंने कहा - ''आप वीतराग चर्चा ही करिये, तत्त्वचर्चा ही करिये; पर इन्कार तो न करिए।''

''भाई ! इस चर्चा के लिए हमने कब इन्कार किया। देखो तुमसे कर ही रहे हैं, इन्कार कहाँ कर रहे हैं ?

तात्त्विक चर्चा तो यहाँ बहुत होती है। आत्मधर्म में ज्ञानगोष्ठी में छपती भी रहती है।''

''हमसे तो करते हैं पर .....''



''तुमसे ही क्यों हम तो सबसे करते हैं। सहजभाव से जो आता है, समझने की दृष्टि से जो पूछता है; उसे हम जो कुछ जानते हैं, बाते ही हैं, मना कब करते हैं ?''

''लोग तो यही कहते हैं कि आप तो किसी से बात ही नहीं करते। अखबारों में भी यही छप रहा है।''

''भाई ! लोगों की हम क्या कहें ? और छापने वालों की छापनेवाले जानें।''

''लोगों की यह भी शिकायत है कि आप अपनी ही कहे जाते हैं, दूसरों की सुनते ही नहीं हैं।''

''तुम्हारी सुन रहे हैं न ?''

''मेरी बात नहीं, और लोगों के विचार भी तो सुनना चाहिए। विचारों का आदान-प्रदान तो होना ही चाहिए।''

जब मैंने यह कहा तब वे कहने लगे -

''सुनो भाई ! वे जो कुछ कहना चाहते हैं, वह सब अखबारों में लिखते ही हैं, उसे हम जानते ही हैं; और हम जो कहते हैं, वह भी बहुत कुछ छप चुका है, वे भी उसे पढ़ते ही होंगे। विचारों का आदान-प्रदान तो इस तरह हो ही जाता है।

विचारों का आदान-प्रदान ही न होता तो चर्चा की बात ही क्यों उठती ?''

निराश-सा होकर जब मैंने अन्तिम प्रयास करते हुए कहा - ''यदि एक बार चर्चा हो जाती तो शायद कुछ न

कुछ रास्ता निकल आता और.....''

तब वे कहने लगे – ''रास्ता निकलता कहाँ है ? तुम्हारे जयपुर (खानियाँ) में सैकड़ों विद्वानों के बीच लिखित चर्चा हो चुकी है और छप भी चुकी है, उससे भी कुछ पार नहीं पड़ी तो अब क्या पार पड़ेगी ? ऐसी चर्चाओं से कुछ पार पड़नेवाली नहीं है, यह जगत तो ऐसे ही चलता रहेगा। मनुष्य भव एवं परम सत्य दिगम्बर धर्म पाया है तो आत्मानुभव प्राप्त कर इसे सार्थक कर लेना चाहिए। जगत के प्रपंचों में उलझने से कोई लाभ नहीं है।''

''आपकी बात तो ठीक है, पर .....''

''हमारी ही क्या ? सबके लिए यही बात है। आयु का क्या भरोसा ? हमारा तो यह कहना है कि तुम भी क्यों इन बातों में उलझते हो ? समय रहते अपना हित कर लेने में ही लाभ है।''

''यह तो ठीक है, किन्तु .....''

''किन्तु-विन्तु कुछ नहीं। यही ठीक है। एक आत्मा ही सार है, वह ही परम शरण है।''

कहते-कहते जब वे अन्तर्मग्न-से हो गये, तब मैंने उनका ध्यान भंग करते हुए कहा कि – ''कुछ लोग ऐसा भी तो कहते हैं कि खानियाँ चर्चा में कुछ बदल दिया है।''

तब कहने लगे – ''लिखित चर्चा हुई। प्रत्येक की तीन-तीन प्रतियाँ बनीं। दोनों पक्षों के पास एक-एक प्रति



एवं एक प्रति मध्यस्थ के पास रही। तीनों प्रतियों पर दोनों पक्षों के एवं मध्यस्थ विद्वानों के हस्ताक्षर हुए, हस्ताक्षरों सहित पुस्तकें छपीं। फिर भी वे ऐसा कहते हैं कि बदल दिया तो हम क्या करें ?

इससे अधिक और क्या किया जा सकता था ? अब भी यदि कोई चर्चा हो तो उसके बारे में भी यदि ऐसा ही कहेंगे तो क्या किया जा सकेगा ?

अत: इन बातों में पड़ना बहुमूल्य समय खराब करना है।''

''यदि आप चर्चा नहीं करेंगे तो वे लोग आपको गैर दिगम्बर घोषित कर देंगे।'' जब मैंने यह कहा, तब वे अत्यंत गंभीर हो गए। कुछ देर तक मौन रहे, फिर कहने लगे –

''भाई ! क्या उनके घोषित करने से हम गैर दिगम्बर हो जायेंगे ? उन्होंने हमें दिगम्बर कब घोषित किया है ? क्या हम उनके दिगम्बर घोषित करने से दिगम्बर हुए हैं ?

हमने तो दिगम्बर धर्म को **'सत्य पंथ निर्ग्रंथ दिगम्बर'** जानकर-मानकर अंगीकार किया है। धर्म तो श्रद्धा की वस्तु है, उसे किसी के सील-सिक्के की आवश्यकता नहीं है।

हमें न तो किसी ने दिगम्बर बनाया है और न कोई हमें गैर दिगम्बर बना सकता है। हम तो अपनी श्रद्धा से दिगम्बर

बने हैं और अपनी श्रद्धा से ही बने रहेंगे।''

जब मैंने कहा कि – ''यह तो सही है कि वे कौन होते हैं किसी को दिगम्बर या गैर दिगम्बर घोषित करने वाले और उनकी घोषणा से होता भी क्या है ? फिर भी समाज में शान्ति तो रहनी ही चाहिए। शान्ति के लिए कुछ न कुछ तो उपाय करना ही चाहिए।''

''क्यों नहीं करना चाहिए, अवश्य करना चाहिए। पर शान्ति का उपाय तो एक मात्र आत्मा का आश्रय करना है। भगवान तो यही कहते हैं। यदि भगवान के बताए मार्ग पर चलना है तो यही एक मार्ग है और तो सब बातें हैं।''

''यह तो बिल्कुल ठीक है कि शान्ति का उपाय एक मात्र आत्मा का आश्रय करना है। पर यदि चर्चा के माध्यम से आपकी बात – आत्मा की बात उन लोगों के समझ में भी आ जाय तो जो लोग आपका विरोध करते हैं, उन लोगों का भी हित हो सकता है तथा सामाजिक वातावरण भी ठीक हो सकता है। आप ही तो कहते हैं कि भाई ! आत्मा तो सभी समान हैं, भूल मात्र पर्याय में है और पर्याय एक समय की है।''

जब मैंने यह कहा तब समझाते हुए बोले –

''यह आत्मा की बात अत्यन्त सूक्ष्म है। जो लड़ने या





समझाने के मूड़ में आएगा, उसकी समझ में आनी सम्भव नहीं। जो समझने के लिए आवे, महीनों शान्ति से सुने, अभ्यास करे, तो समझ में आ सकती है। माथे पर सवार होकर आने वाले के समझ में आवे – ऐसी बात नहीं है। अत्यन्त गम्भीर और सूक्ष्म बात है न। बाहर–बाहर की बात से समझ में आने वाली नहीं।

हमें तो किसी से कोई चर्चा करनी नहीं है, हम तो कहीं चर्चा के लिए जाते नहीं।''

''आप मत जाइये। चर्चा करने वालों को यहाँ बुला लीजिए।''

''न हम कहीं जाते हैं, न किसी को बुलाते हैं। जिसे समझना हो, आवे, शांति से सुने, तो किसी को मना भी नहीं करते। लाभ लेनेवाले के लिए शिविर की सूचना आत्मधर्म में निकलती है। जिसे आना होता है, आता ही है। सूचना मात्र से ही हजारों जिज्ञासु आते हैं और लाभ लेते हैं।''

''यह सब तो ठीक पर एक बार...''

''एक बार क्या, हम तो बार–बार कहते हैं कि यह मनुष्य भव और दिगम्बर धर्म बार–बार मिलनेवाला नहीं। जिसे आत्मा का हित करना हो उसे जगत के सब प्रपंचो से दूर रहकर आत्मानुभव प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। यही एक मात्र करने योग्य कार्य है। शान्ति भी इसी में है।''

ऐसा कहकर जब वे स्वाध्याय करने लगे तब मैं भी

# हम तो उनके दासानुदास हैं

**''स्वामीजी मुनि विरोधी हैं, नया पंथ चला रहे हैं'' आदि न जाने कितनी बे-सिर-पैर की अफवाहें आजकल बुद्धिपूर्वक उड़ाई जा रही हैं।**

**उक्त सन्दर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचे, इस पवित्र भावना से सम्पादक आत्मधर्म द्वारा दि. २७.१२.१९७७ को सोनगढ़ में स्वामीजी से लिया गया यह चौथा इन्टरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।**

''मुनिराज तो चलते-फिरते सिद्ध हैं, हम तो उनके दासानुदास हैं।''

उक्त शब्द पूज्य स्वामीजी ने तब कहे तब उनसे पूछा गया कि कुछ लोग कहते हैं कि आप मुनिराजों को नहीं मानते, उनका अपमान करते हैं, उनकी निन्दा करते हैं।

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा –

''अपमान तो हम किसी का भी नहीं करते, निंदा भी किसी की नहीं करते; फिर मुनिराजों की निंदा करने का तो



प्रश्न ही कहाँ उठता है। शुद्धोपयोग की भूमिका में झूलते हुए नग्न दिगंबर परपूज्य मुनिराज तो एक प्रकार से चलते-फिरते सिद्ध हैं, हम तो उनके दासानुदास हैं।

उनकी चरणरज अपने मस्तक पर धारण कर कौन दिगम्बर जैन अपने को भाग्यशाली नहीं मानेगा ?''

कहते-कहते जब वे भावमग्न हो गये तब मैंने उनकी मग्नता को भंग करते हुए कहा – ''आजकल कुछ लोगों द्वारा यह प्रचार बहुत जोरों से किया जा रहा है कि आप मुनि विरोधी हैं।''

तब वे अत्यन्त गम्भीर हो गये और बोले –

''मुनिराज तो संवर और निर्जरा के मूर्तिमान स्वरूप हैं। मुनि विरोध का अर्थ है – संवर और निर्जरा तत्त्व की अस्वीकृति। जो सात तत्त्वों को भी न माने वह कैसा जैनी ? हमें तो उनके स्मरण मात्र से रोमांच हो आता है। 'णमो लोए सव्वसाहूणं' के रूप में हम तो सभी त्रिकालवर्ती मुनिराजों को प्रतिदिन सैकड़ों बार नमस्कार करते हैं।''

''आजकल यह भी कहा जा रहा है कि आप पार्श्वनाथ भगवान की फणवाली मूर्त्ति को नहीं पूजते, पूज्य नहीं मानते और उन्हें पानी में विसर्जित करने की प्रेरणा देते हैं – क्या यह बात सच है ?''

''भाई ! क्या बात करते हो ? यहाँ सोनगढ़ के मूल मन्दिर में ही भगवान पार्श्वनाथ की फणवाली मूर्त्ति है। वह

लगभग छत्तीस वर्ष से विराजमान है और तबतक रहेगी जबतक मन्दिर है। सभी प्रतिदिन अन्य सभी मूर्त्तियों के समान उसकी पूजन-वंदना करते हैं।

अंतरिक्ष पार्श्वनाथ शिरपुर में पार्श्वनाथ भगवान की मूर्त्ति की हमारे हाथ से प्रतिष्ठा हुई है। उस पर अंकन्यास विधि हमने अपने हाथ से की है। उस प्रतिष्ठा की फिल्म भी बनी थी। वह वहाँ सुरक्षित होगी। तुम उसे आज भी देख सकते हो।

बाहुबली की बेलवाली मूर्त्ति के बारे में भी यही बात है। हम तीन-तीन बार बाहुबली की यात्रा के लिए गये हैं। वहाँ उनकी पूजन-वंदना की है।

फणवाली पार्श्वनाथ की और बेलवाली बाहुबली की प्रतिष्ठित मूर्त्तियाँ अन्य प्रतिष्ठित मूर्त्तियों के समान ही पूज्य हैं।''

''यदि ऐसी बात है तो फिर आप उन्हें विसर्जन करने की प्रेरणा क्यों देते हैं ?''

''कौन देता है ? कब दी ? तुम भी गजब करते हो ? हमने तो आजतक किसी को कुछ नहीं कहा। विसर्जन की बात तो हम सोच भी नहीं सकते।''

''सुना है, कहीं विसर्जित कर दी गई हैं ?''

''नहीं, हमने तो नहीं सुना। ऐसा महान पाप कोई जैनी तो नहीं कर सकता। अधिक हम क्या कहें ?''

''समाज वैसे ही अनेक पंथों में बटा हुआ है, जैसे - तेरापंथ, बीसपंथ, तारणपंथ, गुमानपंट आदि। फिर आप



क्यों नया पंथ चला रहे हैं ?''

''हमने तो कोई नया पंथ नहीं चलाया और न चला रहे हैं। हमारा तो पंथ एक ही है और वह आचार्य कुन्दकुन्द का 'सत्यपंथ निर्ग्रन्थ दिगम्बर'। जो कुन्दकुन्दाम्नाय का मूल दिगम्बर मार्ग है, हमने तो उसी को बुद्धिपूर्वक स्वीकार किया है, उसी पर चल रहे हैं। हमने कोई नया मार्ग नहीं पकड़ा। अनादिनिधन जो मूल मार्ग है, वही हमारा मार्ग है।

जिस पथ पर परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द, अमृतचंद्र, भूतबलि, पुष्पदन्त, नेमिचन्द्र चले, बनारसीदासजी और टोडरमलजी चले, उसी पर हम चल रहे हैं, वही हमारा पंथ है।''

''आपकी प्रासुक पूजनपद्धति, क्षेत्रपाल-पद्मावती आदि को नहीं पूजना, मात्र जल से अभिषेक करना आदि क्रियाएँ तो शुद्ध तेरापंथ आम्नाय से मिलती हैं ?''

''अरे भाई ! तुम कहाँ पंथ की बात ले बैठे ? ये तो मूल दिगम्बर धर्म की बातें हैं। ये सब भूमिकानुसार सद्गृहस्थ के होती ही हैं, मूल बात तो आत्मा के अनुभव की है। जब तक आत्मा नहीं जाना, तब तक सब क्रियाकाण्ड अंक बिना बिन्दी के समान है।''

''आत्मा के अनुभव की बात तो मूल है ही, पर सामाजिक शान्ति भी तो आवश्यक है ?''

''क्यों नहीं ? पर सामाजिक शान्ति का उपाय भी

आध्यात्मिक वातावरण ही है। यदि समाज में पूर्णत: आध्यात्मिक वातावरण रहे तो फिर अशान्ति होगी ही नहीं।''

''यह बात तो पूर्णत: सत्य है कि आपके द्वारा दिगम्बर जैन समाज को एक आध्यात्मिक वातावरण प्राप्त हुआ है। सौराष्ट्र में जहाँ दिगम्बर जिनमन्दिरों के दर्शन दुर्लभ थे, वहाँ आज पद-पद पर विद्यमान विशाल दिगम्बर जिनमंदिरों के दर्शन कर चित्त प्रफुल्लित हो जाता है। आपने लाखों नये दिगम्बर जैन बनाए हैं। लाखों जन्मजात दिगम्बरों को भी दिगम्बर धर्म का मूल तत्त्व बताकर सन्मार्ग में लगाया है। चारों अनुयोगों के दिगम्बर जिनशास्त्रों को बीस लाख से भी अधिक प्रतियों में प्रकाशित कराके अत्यल्प मूल्य में घर-घर पहुँचा दिया है। सैकड़ों आत्मार्थी विद्वान तैयार कर दिये हैं।

यद्यपि समाज का एक बहुत बड़ा भाग आपके इस महान उपकार को स्वीकार करता है, आपके प्रति अत्यन्त वात्सल्य एवं बहुमान भाव रखता है; तथापि कुछ लोग न जाने क्यों आपका विरोध करते हैं और अत्यन्त शान्तिप्रिय धार्मिक समाज का वातावरण अशान्त करने पर तुले हुए हैं। क्या इस सम्बन्ध में आप कुछ कहना चाहेंगे ?''

''नहीं, इस संबंध में हमें कुछ नहीं कहना है। हम क्या कहें, जिसकी जैसी होनहार होगी, उसका वैसा ही परिणमन होगा।

हमने किसी का कुछ नहीं किया है। जिन्हें सन्मार्ग प्राप्त हुआ है, वह उनको उनकी योग्यता-पात्रता से प्राप्त हुआ है,



उसमें हमने कुछ नहीं किया है। तथा जिन्हें द्वेष जगता है, वह भी उनकी अपनी स्वयं की योग्यता से है, उसके कारण भी हम नहीं हैं। हम तो अपनी परिणति के कर्त्ता-धर्त्ता हैं, दूसरों की परिणति के नहीं। कोई भी द्वेष या घृणा का पात्र नहीं है। सबसे ममता भाव रखना ही ज्ञानी का काम है।

रही तत्त्वप्रचार की बात। सो यह तत्त्वप्रचार का काल पका है। सबकी होनहार अच्छी है, सो हो रहा है। इसमें हमारा क्या ? हमारी तो यही भावना है, सब भगवान महावीर एवं कुन्दकुन्दादि आचार्यों के बताये सन्मार्ग पर लगें और अपनी अनन्त निधि को प्राप्त कर अनन्त सुखी हों।''

''वर्तमान वातावरण के संदर्भ में आत्मार्थी बन्धुओं एवं दिगम्बर जैनसमाज को क्या आप कोई आदेश या सन्देश देना चाहेंगे ? यदि आपका कोई आदेश या सन्देश या मार्गदर्शन समाज को प्राप्त हो जाय तो बड़ा उपकार होगा।''

''भाई ! हम तो किसी को आदेश देते ही नहीं, धर्म मार्ग में आदेश का क्या काम ? रही बात सन्देश की सो हमारा तो सदा ही और सभी को एक ही सन्देश है कि अनुकूल-प्रतिकूल समस्त जगत पर से दृष्टि हटाकर एकमात्र ज्ञायकस्वभावी आत्मा की ओर दृष्टि ले जावो, उसी का अनुभव करो, उसी में जम जावो, उसी में रम जावो - यही एकमात्र सुख-शान्ति प्राप्त करने का अमोघ उपाय है।''

यह दुनिया तो ऐसे ही चलती रहेगी, कभी कुछ, कभी

कुछ। इसकी ओर देखते रहोगे तो अमूल्य मनुष्यभव यों ही चला जायेगा और फिर पता ही न चलेगा कि चौरासी लाख योनियों में कहाँ गये।

अच्छा-बुरा वातावरण तो तात्कालिक चीज है। समय पर सब स्वयं ठीक हो जाता है। इसकी अधिक चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। सबको अपना स्वाध्याय, अध्ययन, मनन, चिंतन शान्ति से करते रहना चाहिए।''

''पहिले भी धार्मिक व सामाजिक परिस्थितियों पर आपके द्वारा व्यक्त विचारों को जानकर धार्मिक समाज को बहुत शान्ति व शक्ति मिली थी। इन विचारों को भी मैं आत्मार्थी बन्धुओं व धार्मिक समाज तक आत्मधर्म के माध्यम से पहुँचा दूँगा। इससे समाज को शान्त व स्वाध्यायरत रहने में मार्गदर्शन प्राप्त होगा, शक्ति प्राप्त होगी।''

''तुम्हारी बात तुम जानो'' कहते हुए गुरुदेव स्वाध्यायरत हो गये और मैं भी उनके प्रति अत्यन्त आभार व्यक्त करते हुए नमस्कार कर चल दिया। ●

चैतन्य की मस्ती में मस्त मुनि को देखते हुये गृहस्थ को ऐसा भाव आता है कि अहा ! रत्नत्रय साधनेवाले संत को शरीर की अनुकूलता रहे - ऐसा आहार औषध देऊँ, जिससे वह रत्नत्रय को निर्विघ्न साधे। ऐसे मोक्षमार्गी मुनि को देखते ही श्रावक का हृदय बहुमान से उछल पड़ता है। **- आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी**

## वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं

**''स्वामीजी 'खाओ, पीओ और मौज उड़ाओ' के सिद्धांतों का प्रचार कर रहे हैं।'' - आदि न जाने कैसी-कैसी बे-सिर-पैर की अफवाहें आजकल निहितस्वार्थी लोगों द्वारा बुद्धिपूर्वक फैलाई जा रही हैं।**

**उक्त संदर्भ में स्वामीजी के विचार समाज तक पहुँचे - इस पवित्र भावना से सम्पादक आत्मधर्म द्वारा कुरावड़ (राजस्थान) में पंचकल्याणक के अवसर पर दीक्षा कल्याणक के दिन दि. १८.५.१९७८ को पूज्य स्वामीजी से लिया गया यह पाँचवाँ इन्टरव्यू आत्मधर्म के जिज्ञासु पाठकों की सेवा में प्रस्तुत है।**

''जो मद्य-मांस-मधु का सेवन करता है, जिनमें अगणित त्रस जीव पाये जाते हैं - ऐसे पंच उदुम्बर फलों को खाता है; वह तो नाममात्र का भी जैन नहीं, जिनवाणी सुनने का भी पात्र नहीं।''

उक्त शब्द पूज्य स्वामीजी ने तब कहे जब उनसे पूछा गया कि ''आप तो कहते हैं कि आत्मा के अनुभव के बिना

अर्थात् सम्यग्दर्शन हुए बिना संयम अर्थात् सम्यक्चारित्र नहीं होता। तो क्या मद्य-मांस-मधु का त्याग भी सम्यग्दर्शन होने के बाद होगा ?''

अपनी बात को स्पष्ट करते हुए वे आगे बोले -

''भाई ! इन चीजों का सेवन तो नामधारी जैन को भी नहीं होना चाहिए। प्रत्येक जैनमात्र को सप्त व्यसनों का त्याग और अष्ट मूलगुणों का धारण सर्वप्रथम होना चाहिए।

जरा विचार तो करो ! क्या शराबी कबाबी को आत्मा का अनुभव हो सकता है ? तुम आत्मा के अनुभव और सम्यग्दर्शन की बात करते हो, वह तो जिनवाणी सुनने का भी पात्र नहीं है।''

निरन्तर अध्ययन के लिए समीप रखे हुए शास्त्रों में से पुरुषार्थसिद्ध्युपाय उठकार उसमें से ७४वाँ छन्द निकालकर दिखाते हुए बोले -

''लो देखो, साफ-साफ लिखा है -

**अष्टावनिष्टदुस्तरदुरितायतनान्यमूनि**
**परिहृत्य ।**
**जिनधर्मदेशनाया भवन्ति पात्राणि शुद्धधिय: ।।७४।।**

दु:खदायक, दुस्तर और पाप के स्थान ऐसे आठ पदार्थों का परित्याग करके निर्मल बुद्धिवाले पुरुष जैनधर्म के उपदेश को सुनने के पात्र होते हैं।''



'' और रात्रि भोजन ?''

मेरे द्वारा यह कहे जाने पर बोले -

''रात्रि भोजन में मांस भक्षण का दोष है। रात्रि में अनेक कीड़े-मकोड़े भोजन में पड़ जाते हैं। अथाना-अचार भी नहीं खाना चाहिए, उसमें भी त्रसजीव पड़ जाते हैं। अनछना पानी भी काम में नहीं लेना चाहिए। अनन्तकाय जमीकन्द, अमर्यादित मक्खन आदि का सेवन करना भी ठीक नहीं।

हमने तो ६९ वर्षों से रात्रि में पानी की बूँद भी नहीं ली है। विक्रम सं. १९६५-६६ से अचार भी नहीं खाया है। अनछना पानी पीना तो बहुत दूर, काम में भी नहीं लेते। जमीकन्द आदि खाने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।''

''और कुछ ?''

''और कुछ क्या ? चरणानुयोग के शास्त्रों में जो आचरण सामान्य जैनी के लिए बताया गया है, उसका पालन प्रत्येक जैनी को अवश्य करना चाहिए।''

''यदि ऐसी बात है तो आप यह सब कहते क्यों नहीं हैं ?''

''कह तो रहे हैं तुमसे, और कैसे कहना होता है ?''

''हमसे तो कह रहे हैं, पर प्रवचन में तो नहीं कहते ?''

''प्रवचनों में भी कहते हैं। अभी बैंगलौर, हैदराबाद,

बंबई आदि में भी कहा था। तुमने नोट भी किया था, आत्मधर्म (अप्रैल, १९७८) में छापा भी है।''

''वहाँ तो कहा था, पर सोनगढ़ में तो नहीं कहते ?''

''वहाँ भी कहते हैं। मद्य-मांस की तो बात ही क्या, सोनगढ़ में तो कोई रात्रि में भोजन भी नहीं करता। जमीकन्द और अनछने पानी का प्रयोग भी नहीं करते।''

''यह तो ठीक कि वहाँ कोई रात्रि में भोजन आदि नहीं करता और आप कहते भी हैं, पर कभी-कभी ही कहते हैं, हमेशा क्यों नहीं कहते ? आपको ऐसी बात कहते हमने बहुत कम सुना है ?''

''तुम जैसे लोग हमसे तत्त्व का मर्म सुनने आते हैं। अनुभव की-अध्यात्म की गहरी बातें सुनने आते हैं; तुमसे ऐसी बातें कहें ? भाई ! बात यह है हम पहिले तो बहुत कहते थे। पर अब ऐसी बातों की अपेक्षा तत्त्व की गहरी चर्चा करने का विकल्प आता है।

मूल बात तो एक आत्मा के अनुभव की है, उसके बिना यह मनुष्य भव व्यर्थ ही चला जायगा। यह सब तो अनन्त बार किया, पर आत्मा के अनुभव बिना इससे क्या होता है ? भव का अभाव तो होने से रहा। आत्मानुभव के पूर्व इनके सेवन के अभावमात्र से आत्मा का अनुभव हो जावेगा - ऐसी बात नहीं है। जब तक राग से भिन्न आत्मा



अपने अनुभव में नहीं आयेगा तब तक यह सब ठीक ही है, कुछ विशेष दम नहीं है - इन बातों में।

इन बातों की अधिक चर्चा से लाभ भी क्या है ? जैन समाज में मद्य-मांस तो है ही नहीं। जब इन चीजों का कोई सेवन ही नहीं करता, तब इनकी चर्चा बार-बार करने से लाभ भी क्या है ?''

जब मैंने कहा कि ''जैन समाज में भी यह रोग लगने लगा है।''

तब आश्चर्य व्यक्त करते हुए बोले ''क्या कहते हो ? ऐसा नहीं हो सकता।''

''नहीं साहब ! हो रहा है।''

''हम तो तुम्हारे मुँह से सुन रहे हैं, यह तो बहुत बुरी बात है। कैसा समय आ गया है। इस अमूल्य मनुष्यभव और जैनकुल में यह सब ? क्या होगा इनका ? कहाँ जायेंगे ऐसे लोग ?'' कहते-कहते एकदम गम्भीर हो गये।

उनकी गम्भीरता को भंग करते हुए जब मैंने कहा - ''इसमें क्या ? यह तो सब परद्रव्य हैं। जब एक द्रव्य दूसरे का कुछ भला-बुरा करता ही नहीं, एक द्रव्य का दूसरे पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता, तब फिर क्यों इनके खाने-पीने का आनन्द छोड़ा जाय ?''

तब कहने लगे - ''भाई ! तुम कैसी बातें करते हो ? खाने-पीने में आनन्द है ही कहाँ ? ये सब तो दु:खरूप हैं,

दु:ख छोड़ने की बात कह रहे हैं; आनन्द छोड़ने की नहीं। आनन्द तो अपनी आत्मा में है। जब हम आत्मा का आश्रय लेंगे, आत्मा का अनुभव करेंगे, तब आनंद की प्राप्ति होगी।

यह बात तो पूर्णत: सत्य ही है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का भला-बुरा नहीं करता, पर जब यह आत्मा अज्ञान दशा में पर के लक्ष्य से स्वयं राग-द्वेष-मोहरूप भाव करता है, तब स्वयं दु:खी होता है। यद्यपि परपदार्थ सुख-दु:ख के कारण नहीं हैं, तथापि उनके सेवन का राग तो दु:खरूप है, दु:ख का कारण है। अभक्ष्य पदार्थ राग के आश्रयभूत निमित्त हैं, अत: उनके प्रति राग छोड़ना इष्ट है। राग छूटने पर वे स्वयं छूट जाते हैं, अत: यह भी कहा जाता है कि उन्हें छोड़ा।

एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्त्ता नहीं - यह बात भोगों की पुष्टि के लिए नहीं कही जाती, अपितु वस्तु के सही स्वरूप को बताने के लिए कही जाती है।

जो व्यक्ति इस महान सिद्धान्त से भोग की पुष्टि निकाले उसके लिए हम क्या करें ? वह तो ऐसी बात सुनने का भी पात्र नहीं है।''

जब उन्होंने यह कहा तो मैंने तत्काल बात को पकड़ते हुए कहा - ''इसीलिए तो कहते हैं कि आप अपात्रों को ऐसी बातें क्यों समझाते हैं ?''

मुस्कुराते हुए बोले - ''हम अपात्रों को कहाँ समझाते हैं ? हम तो तुम जैसे पात्रों को समझाते हैं। जो हमारी बातों को यहाँ-वहाँ से सुनके उल्टा-सीधा अर्थ निकालते हैं, वे



हमारे पास आते ही कहाँ हैं ?

समय निकालकर जो हमारे पास आते हैं, महीनों रहते हैं, ऐसे पात्र जीवों को भी न बतावें तो किसे बतावें ?

हमारे पास आनेवालों ने तो कभी ऐसा अर्थ निकाला नहीं।''

''तो ठीक है जो आपके पास सोनगढ़ आते हैं, महीनों रहते हैं, उनसे ही यह बातें कहा करें। जब आप बाहर जाते हैं, वहाँ क्यों कहते हैं ?''

''हम जहाँ भी जाते हैं, हमें सुनने तो पात्र जीव ही आते हैं, क्योंकि सब जानते हैं कि हमारे पास कोई राग-रंग की बात तो है नहीं। हमारे पास तो शुद्ध आत्मा की बात है। उसे सुनने ही जो आते हैं, उन्हें हम सुनाते हैं। अत: हम चाहे जहाँ हो, सोनगढ़ में या बाहर कहीं भी, हमारे पास तो एक ही बात है, सो वही सबसे कहते हैं।''

''आप यह भी तो कहते हैं कि कोई किसी को समझा नहीं सकता, फिर भी आप समझाते हैं? प्रवचन करते हैं ?''

''कोई किसी को समझा नहीं सकता - यह बात पूर्णत: सही है, हमारी बात तो बहुत दूर भगवान भी नहीं समझा सकते, यदि समझा सकते होते तो फिर आज दुनिया में कोई नासमझ नहीं रहता। भगवान जैसे समझाने वाले मिले, यह जगत तो फिर भी ना समझा, फिर हमारी क्या विसात् ?

हम तो सभी को समझाना चाहते हैं, पर जो स्वयं

समझने का यत्न करते हैं, उन्हें उनके कारण स्वयं समझ में आ जाता है। जो यत्न नहीं करते, उनकी समझ में नहीं आता है। हम तो निमित्तमात्र हैं।

रही बात यह कि हम क्यों समझाते हैं ? क्यों प्रवचन करते हैं ? सो भाई ! बात यह है कि यह जानते हुए भी कि हम किसी को समझा नहीं सकते, समझाने का भाव आए बिना नहीं रहता। हमारी ही क्या समस्त ज्ञानियों की यही दशा है। आचार्यों को भी यही श्रद्धा थी, फिर भी उन्हें समझाने का भाव आये बिना रहा नहीं। यदि ऐसा न होता तो सम्पूर्ण जिनागम की रचना कैसे होती ? फिर तो देशनालब्धि भी न रहती।''

''देशनालब्धि के बिना तो सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति ही नहीं होती ?''

''यह बात ठीक है कि सम्यग्दर्शन के पूर्व देशनालब्धि होती है, पर देशनालब्धि से सम्यग्दर्शन होता है, यह बात नहीं; क्योंकि देशनालब्धि तो निमित्तमात्र है। चार लब्धियाँ तो अनेक बार प्राप्त हुईं, पर सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। पाँचवीं करणलब्धि हो तो नियम से सम्यग्दर्शन होता है। करणलब्धि उपादानरूप है, अत: कार्य का नियामक तो उपादान ही रहा है।''

''तो क्या आप निमित्त को नहीं मानते ?''

''निमित्त को निमित्त मानते हैं, निमित्त को कर्त्ता नहीं मानते। कर्त्ता वह है भी नहीं। कर्त्ता की व्याख्या आचार्य अमृतचन्द्र ने इसप्रकार दी है –



**य: परिणमति स कर्त्ता।**[१]

जो कार्यरूप स्वयं परिणमित हो, उसे कर्त्ता कहते हैं।

उपादान स्वयं कार्यरूप परिणमित होता है; अत: वास्तविक कर्त्ता तो वही है।''

''कहीं-कहीं निमित्त को भी कर्त्ता कहा है न ?''

''निमित्त को भी व्यवहार से कर्त्ता कहा जाता है। वास्तविक कर्त्ता उपादान ही है। जहाँ निमित्त को कर्त्ता कहा हो, उसे व्यवहारनय से किया गया उपचरित कथन जानना चाहिए।''

''आपकी आत्मा की बात है तो बहुत अच्छी, पर है बहुत कठिन ?''

''कठिन तो है, पर अशक्य नहीं। यदि कोई पुरुषार्थ करे तो समझ में आ सकती है।''

''जनसाधारण की समझ मे आना तो सम्भव नहीं ?''

''क्यों नहीं ? वे भी तो आदमी हैं। कठिन हैं, पर इतनी नहीं कि आदमी की भी समझ में न आये। भगवान तो कहते हैं कि प्रत्येक सैनी पंचेन्द्रिय को आत्मज्ञान हो सकता है, चाहे वह किसी भी गति में क्यों न हो ?

मेरी समझ में न आवेगी – ऐसा मानकर किसी को भी उदास नहीं होना चाहिए। अनंत दु:खों को मेटनेवाली, संसार-सागर से पार उतारनेवाली बात तो एकमात्र आत्मा की ही बात है।

यद्यपि प्रत्येक गृहस्थ का जीवन पूर्ण सदाचारमय होना

चाहिए; तथापि समस्त सदाचार की शोभा आत्मज्ञान से है, आत्मश्रद्धान से है, आत्मानुभूति से है।''

''और सम्यक्चारित्र ?''

''सम्यक्चारित्र तो साक्षात् धर्म है, मुक्ति का साक्षात् कारण है; किन्तु वह सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान के बिना नहीं होता।''

''शुद्धभाव तो इस जमाने में होता नहीं और शुभभाव आप छुड़ाते हैं, तो क्या अशुभभाव में रहना ?''

''कौन कहता है कि शुद्धभाव इस समय में नहीं होता ? साक्षात् धर्म तो वीतरागभावरूप शुद्धभाव ही है। शुद्धभाव नहीं होने का अर्थ यह है कि इस युग में धर्म नहीं होता, जबकि शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि शुद्धभावरूप चारित्रधर्म का सद्भाव तो पंचमकाल के अन्त तक रहेगा।

और यह भी कौन कहता है कि हम शुभभाव छुड़ाते हैं ? हम तो शुभभाव को धर्म मानना छुड़ाते हैं। रागरूप होने से वह धर्म है भी नहीं। क्योंकि धर्म तो वीतरागस्वरूप है।

शुभराग की सत्ता को भूमिकानुसार मुनिराज के भी होती है, किन्तु शुभराग को धर्म सम्यग्दृष्टि ज्ञानी भी नहीं मानता। शुभराग का होना चारित्र की कमजोरी है, जबकि शुभराग को धर्म मानना मिथ्यात्व नामक महापाप।

१. समयसार कलश, ५१



शुभभाव को धर्म मानना छुड़ाकर आचार्यदेव मिथ्यात्व नामक महापाप को छुड़ाते हैं, शुभभाव को नहीं।''

''तो शुभभाव तो करना चाहिए ?''

''चाहिए का प्रश्न कहाँ उठता है ? ज्ञानी धर्मात्मा को भूमिकानुसार शुभभाव आता ही है, किन्तु वह उसे धर्म नहीं मानता। शास्त्रों में भी जहाँ कहीं शुभभाव को व्यवहार से धर्म कहा है, वह कथन उपचरित कथन है। वास्तविक (निश्चय) धर्म तो शुभाशुभभाव के अभावरूप शुद्धभाव ही है।''

''शुभ को छोड़कर अशुभ में जाना तो अच्छा नहीं ?''

''बिलकुल नहीं, पर जिसप्रकार शुभ को छोड़कर अशुभ में जाना अच्छा नहीं; उसीप्रकार शुभ को धर्म मानना भी अच्छा नहीं। इस ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए।''

प्रतिष्ठा में प्राप्त प्रतिमाओं पर अंकन्यास-विधि सम्पन्न करने जाने के लिए उनका समय हो गया था। अत: ''अभी और समय नहीं है, कुछ पूछना हो तो फिर कभी पूछना'' - यह कहकर जब वे जाने लगे तो मैं भी उन्हें सविनय नमस्कार कर चल दिया।

भाई ! ऐसा अमूल्य मनुष्य-जीवन पाकर यों ही चला जावे, उसमें तू सर्वज्ञदेव को पहिचान न करे, सम्यग्दर्शन का सेवन न करे, शास्त्र-स्वाध्याय न करे, धर्मात्मा की सेवा न करे और कषायों की मन्दता न करे - तो इस जीवन में तूने क्या किया ? - **आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी**

# क्रमबद्धपर्याय

**आज के बहुचर्चित विषय 'क्रमबद्धपर्याय' के संबंध में विक्रम की इक्कीसवीं शती में क्रमबद्ध की चर्चा आरम्भ करने वाले पूज्य श्री कानजी स्वामी से उनकी ही जन्म-जयंती के अवसर पर दि. २८.४.१९७९ को बंबई में सायंकालीन तत्त्वचर्चा के समय हजारों मुमुक्षु बन्धुओं के बीच सम्पादक आत्मधर्म द्वारा लिया गया इन्टरव्यू जन-जन की जानकारी के लिये यहाँ प्रस्तुत है।**

**'क्रमबद्धपर्याय' पर हुए स्वामीजी के प्रवचन यद्यपि 'ज्ञेयस्वभाव-ज्ञानस्वभाव' नाम से प्रकाशित हो चुके हैं; तथापि उनके ताजे विचार समाज को प्राप्त हों - यही उद्देश्य रहा है इस इन्टरव्यू का।**

**ध्यान रहे टेप के आधार पर सम्पादित यह इन्टरव्यू स्वामीजी को दिखा लिया गया है।**

''धर्म का मूल सर्वज्ञ है, क्रमबद्धपर्याय का निर्णय हुए बिना सर्वज्ञ का निर्णय नहीं हो सकता। धर्म का आरंभ ही क्रमबद्ध के निर्णय से होता है। इसका निर्णय करना बहुत जरूरी है।'' उक्त शब्द स्वामीजी ने तब कहे जब उनसे कहा गया कि - ''आत्मधर्म के संपादकीय में 'क्रमबद्धपर्याय' के



सम्बन्ध में हम एक लेखमाला चला रहे हैं। उसे बाद में पुस्तकाकार भी प्रकाशित किया जायेगा। आपने इस युग में 'क्रमबद्धपर्याय' का एक प्रकार से उद्घाटन ही किया है। इसके सन्दर्भ में उठने वाली अनेक शंकाओं-आशंकाओं के सम्बन्ध में आपके ताजे विचार पाठकों तक पहुँचाना बहुत उपयोगी रहेगा। यदि आपकी अनुमति हो तो कुछ बातें आपसे पूछूँ?''

वे अपनी बात आरम्भ करते हुए बोले - ''भाई! तुम्हें जो पूछना हो पूछो, हम कब मना करते हैं? समझने के लिए जिज्ञासा भाव से पूछने वाले आत्मार्थियों के लिए तो हमारा दरवाजा सदा ही खुला रहता है। वादविवाद करनेवालों के लिए हमारे पास समय नहीं है। वादविवाद में कोई सार तो निकलता नहीं। चर्चा के लिए तो कोई मनाई नहीं है।

पण्डित टोडरमलजी ने रहस्यपूर्ण चिट्ठी में लिखा है कि - ''साधर्मी के तो परस्पर चर्चा ही चाहिए।''

क्रमबद्धपर्याय पर लिखकर तुम अच्छा ही कर रहे हो। कम से कम लोगों का ध्यान तो इस ओर जाएगा। जिसकी भली होनहार होगी, उनके ध्यान में बात जमेगी भी। 'धर्म का मूल सर्वज्ञ है', क्रमबद्ध का निर्णय हुए बिना सर्वज्ञ का निर्णय नहीं हो सकता। धर्म का आरम्भ ही क्रमबद्धपर्याय के निर्णय से होता है। इसका निर्णय करना बहुत जरूरी है।''

**प्रश्न :** ''आप तो पर्याय पर दृष्टि रखनेवाले को पर्यायमूढ़ कहते हो?''

**उत्तर :** ''हम क्या कहते हैं, प्रवचनसार में लिखा है –

**पज्जयमूढ़ा हि परसमया''**

**प्रश्न :** ''क्रमबद्धपर्याय भी तो एक पर्याय है, फिर उसका निर्णय करना क्यों आवश्यक है ?''

**उत्तर :** ''क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करना तो आवश्यक है, पर वह दृष्टि का विषय नहीं है।

एक बार और भी ध्यान रखो कि पर्याय का निर्णय पर्याय के आश्रय से नहीं होता, किन्तु द्रव्य के आश्रय से होता है। ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से क्रमबद्धपर्याय का निर्णय होता है। अत: यह कहा जाता है कि आश्रय करनयोग्य एकमात्र अपना ज्ञायकस्वभाव ही है, पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं है।''

**प्रश्न :** ''तो फिर क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करे या नहीं ?''

**उत्तर :** ''निर्णय तो करो, आश्रय मत करो। हम आश्रय करने का निषेध करते हैं, तो तुम निर्णय करने का निषेध करने लगते हो ? हम तो यह कहते हैं कि ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से क्रमबद्ध का निर्णय होगा। अत: क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करने के लिए ज्ञायकस्वभाव का आश्रय करो। ज्ञायकस्वभाव के आश्रय से क्रमबद्ध का निर्णय सहज हो जाएगा। क्रमबद्ध के निर्णय करने की जरूरत तो है ही, आश्रय करने की जरूरत नहीं।

क्रमबद्ध का निर्णय तो महापुरुषार्थ का कार्य है। उससे सारी दृष्टि ही पलट जाती है। यह कोई साधारण बात नहीं



है। यह तो जैनदर्शन का मर्म है।''

**प्रश्न :** ''जब सबकुछ क्रमबद्ध ही है तो फिर जब हमारी क्रमबद्धपर्याय में क्रमबद्ध का निर्णय होना होगा, तब आएगा। उसके पहिले क्रमबद्धपर्याय हमारी समझ में भी कैसे आ सकती है ? मान लो हमारी समझ में क्रमबद्ध आने में अनन्त भव बाकी हैं, तो अभी कैसे आ सकती है ?''

**उत्तर :** ''यह बात किसके आश्रय से कहते हो ? क्या तुम्हें क्रमबद्ध का निर्णय हो गया है ? नहीं, तो फिर यह कहने का तुम्हें क्या अधिकार है ? जिसे क्रमबद्ध का निर्णय हो जाता है, उसे ऐसा प्रश्न ही नहीं उठता है। क्रमबद्ध की श्रद्धा वाले के अनन्त भव ही नहीं होते। क्रमबद्ध की श्रद्धा तो भव का अभाव करने वाली है। जिसके अनन्त भव बाकी हों, उसकी समझ में क्रमबद्ध आ ही नहीं सकती; क्योंकि उसकी दृष्टि ज्ञायक के सन्मुख नहीं होती और ज्ञायक के सन्मुख दृष्टि हुए बिना क्रमबद्धपर्याय समझ में नहीं आती है।

ज्ञायक के सन्मुख होकर जहाँ क्रमबद्ध का निर्णय किया वहाँ भव उड़ जाते हैं। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय होने पर निर्मल पर्याय मेरा कर्म और मैं उसका कर्त्ता – यह बात भी नहीं रहती। पर्याय स्वसमय पर होगी ही – ऐसी श्रद्धा होने से उसे करने की कोई व्याकुलता नहीं रहती। मुझे भव नहीं – इसप्रकार की नि:शंकता प्रकट हो जाती है।

क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में कर्त्तापन की बुद्धि उड़ जाती

है और ज्ञातापन की बुद्धि प्रगट हो जाती है – यह उसका फल है। यदि कर्त्ताबुद्धि न उड़े तो समझना चाहिए कि अभी उसकी समझ में क्रमबद्धपर्याय आई नहीं है।''

**प्रश्न :** ''अभी आपने फरमाया कि क्रमबद्धपर्याय का निर्णय पर्याय पर दृष्टि रखने से नहीं होगा, त्रिकाली ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि रखने से होगा तो फिर क्रमबद्धपर्याय के निर्णय की जरूरत ही क्या है ? बस हम तो ज्ञायकस्वभाव का आश्रय ले लें न ?''

**उत्तर :** ''ले सकते हो तो ले लो न, कौन मना करता है ? पर विकल्प में पर्याय की स्वतन्त्रता का निर्णय हुए बिना पयार्य पर से दृष्टि हटती कहाँ है ? और ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि जाये बिना क्रमबद्धपर्याय का भी सच्चा निर्णय नहीं होता है। तथा ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि जाने पर क्रमबद्धपर्याय का निर्णय हो ही जाता है। अत: क्रमबद्धपयार्य के निर्णय नहीं करने की बात कहाँ रही ? ज्ञायकस्वभाव पर दृष्टि जाने के पहिले आगम व युक्ति के आधार पर विकल्पात्मक निर्णय तो हो सकता है, सच्चा नहीं, पर विकल्पात्मक निर्णय भी तो जरूरी है, उसके बिना पर्याय की महिमा हटती ही नहीं, पर्याय से दृष्टि हटती ही नहीं।''

**प्रश्न :** ''तो इसका मतलब यह हुआ कि पहिले आगम और युक्ति के आधार पर विकल्पात्मक ज्ञान में क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करें, फिर जब हमारी दृष्टि पर्याय



पर से हटकर ज्ञायकस्वभाव पर जाएगी, स्थिर होगी तब क्रमबद्धपर्याय की सच्ची श्रद्धा होगी ?''

**उत्तर :** ''हाँ, भाई ! बात तो ऐसी ही है।''

**प्रश्न :** ''आगम के आधार पर क्रमबद्धपर्याय का निर्णय करें – यह बात तो ठीक, पर लोगों का तो यह कहना है कि शास्त्रों में तो कहीं क्रमबद्धपर्याय आई नहीं है – यह तो आपने नई निकाली है।''

**उत्तर :** ''नहीं भाई ! ऐसी बात नहीं है। शास्त्रों में अनेक स्थानों पर क्रमबद्ध की बात आती है। समयसार के सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार में है। वहाँ आत्मख्याति टीका में 'क्रमनियमित' ऐसा मूल पाठ है।''

**प्रश्न :** ''क्रमनियमित का अर्थ क्या है ?''

**उत्तर :** ''क्रमनियमित शब्द में क्रम अर्थात् क्रमसर (नंबरवार) तथा नियमित अर्थात् निश्चित। जिस समय जो पर्याय आनेवाली है, वही आएगी, उसमें फेरफार नहीं हो सकता।''

**प्रश्न :** ''समयसार में तो है, पर किसी और भी शास्त्र में है या नहीं ? समयसार तो आपका ही शास्त्र है।''

**उत्तर :** ''लो, यह अच्छी बात कही। समयसार हमारा कैसे है ? हम तो उसे पढ़ते हैं, है तो वह परमपूज्य दिगम्बराचार्य कुन्दकुन्ददेव का।

प्रवचनसार में भी गाथा ९९, १००, १०१ व १०२ में

है। विस्तार से सब बात कही है। जन्मक्षण और स्व-अवसर की बात आती है। आकाश के प्रदेशों (विस्तारक्रम) का उदाहरण देकर कालक्रम (प्रवाहक्रम) समझाया है। जैसे - जो प्रदेश जहाँ-जहाँ है, वह वहीं-वहीं रहता है, उसमें आगे-पीछे होना सम्भव नहीं। उसीप्रकार जो-जो पर्यायें जिस-जिस काल में होनी हैं, वे-वे पर्यायें उसी-उसी काल में होंगी, उनका आगे-पीछे होना सम्भव नहीं।

प्रत्येक पर्याय स्वयंसत् है, अहेतुक है। समयसार के बंधाधिकार में पर्याय को अहेतुक कहा है।''

**प्रश्न :** ''पर्याय अहेतुक तो है, पर इसके बाद यही होगी - यह कैसे हो सकता है ?

**उत्तर :** ''इसमें नहीं हो सकने की क्या बात है ? इसके बाद यही होगी; जो होनेवाली है, वही होगी - ऐसा ही है। मोतियों के हार का दृष्टान्त देकर समझाया है न ? जैसे - माला में जो मोती जहाँ हैं, वहीं रहेंगे। यदि उन्हें आगे-पीछे करें तो माला टूट जाएगी; उसी प्रकार जो पर्याय जिस समय होनी होगी, उसी समय होगी, आगे-पीछे करने से वस्तु व्यवस्था ही न बनेगी। उसके आगे-पीछे होने का कारण क्या है ? वह अकारण तो आगे-पीछे हो नहीं जावेगी। यदि कोई कारण है तो फिर पर्याय अहेतुक नहीं रहेगी।''

**प्रश्न :** ''प्रवचनसार भी तो कुंदकुंद का ही है। क्या किन्हीं और आचार्यों के शास्त्रों में क्रमबद्ध की बात नहीं आती ?''



**उत्तर :** ''क्यों नहीं आती ? कार्तिकेयानुप्रेक्षा की गाथा ३२१ से ३२३ तक में आती है। चारों ही अनुयोगों के शास्त्रों में किसी न किसी रूप में यह बात आती ही है।

फिर सर्वज्ञता की बात तो सभी शास्त्रों में है। यदि सीधी समझ में नहीं आती है तो सर्वज्ञता के आधार पर क्रमबद्धपर्याय समझनी चाहिए। 'केवलज्ञानी ने जैसा देखा होगा, वैसे ही होगा' का यही अर्थ तो होता है कि भविष्य में जिस समय जो पर्याय होनी है, वही होगी।''

**प्रश्न :** ''आप क्रमबद्धपर्याय को सिद्ध करने में सर्वज्ञता का सहारा क्यों लेते हैं ? सीधा ही समझाइये न ?''

**उत्तर :** ''अरे भाई ! हमने तो यह कहा है कि जब सीधा समझ में न आ सके तो सर्वज्ञता का सहारा लेना चाहिये, क्योंकि सर्वज्ञता के आधार पर समझने में सरलता रहती है।''

**प्रश्न :** ''सर्वज्ञता के आधार पर समझने में सरलता कैसे रहती है ?''

**उत्तर :** ''सर्वज्ञ भगवान तीन लोक के समस्त द्रव्यों और उनकी त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों को एक साथ जानते हैं। भूतकाल और वर्त्तमान पर्यायों के साथ-साथ वे भविष्य में होने वाली पर्यायों को भी जानते हैं।''

**प्रश्न :** ''जानते हैं का क्या तात्पर्य हैं ?''

**उत्तर :** ''यही कि जिस द्रव्य की जो पर्याय भविष्य में जिस समय जैसी होनी है, उसे सर्वज्ञ अभी जानते हैं। अत:

जो भावी पर्यायें सर्वज्ञ के ज्ञान में जैसी आई हैं वे वैसी ही होंगी, उनमें कोई फेरफार सम्भव नहीं है।

केवलज्ञान (सर्वज्ञता) का निर्णय अर्थात् अर्हन्त का निर्णय। प्रवचनसार गाथा ८० में आता है कि अर्हन्त भगवान को द्रव्यरूप से, गुणरूप से और पर्यायरूप से जानता है, उसका मोह नाश होता है।

हमें त्रेसठ वर्ष पहिले फाल्गुन सुदी १४ के दिन यही भाव अन्दर से आया था। शब्द ख्याल में नहीं थे, वाचन भी नहीं था, पर भाव यही ख्याल में आया था।''

**प्रश्न :** ''केवली भगवान भूत-भविष्य की पर्यायों को द्रव्य में योग्यतारूप जानते हैं अथवा उन पर्यायों को वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानते हैं ?''

**उत्तर :** ''प्रत्येक पदार्थ की भूत और भविष्यकाल की पर्यायें वर्तमान में अविद्यमान-अप्रगट होने पर भी सर्वज्ञ भगवान उन्हें वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानते हैं। अनन्त काल पहले हो चुकी भूतकाल की पर्यायें और अनन्तकाल पश्चात् होनेवाली भविष्य की पर्यायें अविद्यमान होने पर भी उन्हें केवलज्ञान वर्तमान की तरह प्रत्यक्ष जानता है।

अहाहा ! जो पर्यायें हो चुकीं और होनेवाली हैं; ऐसी भूत-भविष्य की पर्यायों को प्रत्यक्ष; जाने उस ज्ञान की दिव्यता का क्या कहना ? केवली भगवान भूत-भविष्य की



पर्यायों को द्रव्य में योग्यतारूप जानते हैं - ऐसा नहीं है। किन्तु उन सभी पर्यायों को वर्तमानवत् प्रत्यक्ष जानते हैं, यही सर्वज्ञ के ज्ञान की दिव्यता है। भूत-भविष्य की अविद्यमान पर्यायें केवलज्ञान में विद्यमान ही हैं। ओहो ! एक समय की केवलज्ञान की पर्याय की ऐसी विस्मयता और आश्चर्यता है, तो पूरे द्रव्य की सामर्थ्य कितनी विस्मयपूर्ण और आश्चर्यजनक होगी ? उसका क्या कहना ?

अहाहा ! पर्याय का गुलांट मारना यह कोई छोटी बात है ? पर्याय तो अनादि से पर में ही जा रही है, उसको पलटकर अन्दर में ले जाना है। गहराई में ले जाना महान पुरुषार्थ का कार्य है। परिणाम में अपरिणामी भगवान के दर्शन हो जायें - यह पुरुषार्थ अपूर्व है।''

**प्रश्न :** ''केवली भगवान निश्चय तो केवल अपने आपको जानते हैं, पर को तो वे व्यवहार से जानते हैं, ऐसा नियमसार में कहा है। और समयसार में व्यवहार को झूठा कहा है। झूठा अर्थात् असत्यार्थ ..... इसका अर्थ क्या ?''

**उत्तर :** ''व्यवहार है ही नहीं - ऐसा उसका अर्थ नहीं है। व्यवहार जानने लायक है - ऐसा १२वीं गाथा में कहा है। वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। सर्वथा झूठा नहीं है, उसे गौण करके असत्यार्थ कहा है। प्रवचनसार की टीका में पाण्डे हेमराजजी ने कहा है कि व्यवहार को गौण करके असत्य कहा है, अभाव करके असत्य नहीं कहा है।''

**प्रश्न :** ''तो क्या केवली पर को जानते नहीं ?''

**उत्तर :** ''कौन कहता है ? जानते तो वे सभी पदार्थ हैं।''

**प्रश्न:** ''फिर उनके पर के जानने को व्यवहार क्यों कहा ?''

**उत्तर :** ''पर है, इसलिए तथा तन्मय होकर नहीं जानते इसलिए भी।''

**प्रश्न :** ''क्रमबद्ध मानने से सब गड़बड़ हो जाता है।''

**उत्तर :** ''गड़बड़ तो क्रमबद्ध नहीं मानने से होता है। क्रमबद्ध मानने से तो सब गड़बड़ उड़ जाती है। वस्तु मे तो कहीं गड़बड़ है नहीं, वह तो पूर्ण व्यवस्थित है। अज्ञानी की मति ही गड़बड़ा रही है। सो क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा से मति व्यवस्थित हो जाती है।''

**प्रश्न :** ''जब हमारे करने से कुछ होता ही नहीं है तो फिर कोई कार्य क्यों करेगा ? जब कोई बनाएगा नहीं तो यह पंडाल कैसे बनेगा ? कारखाने कैसे चलेंगे ? सारी व्यवस्था ही गड़बड़ा जाएगी।''

**उत्तर :** ''कौन पंडाल बनाता है, कौन कारखाने चलाता है ? अज्ञानी पंडाल बनाने और कारखाने चलाने का अभिमान करते हैं – यह बात तो सही है, पर बनाता या चलाता कोई किसी को नहीं। जब एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य में अत्यन्त अभाव है तो तब एक द्रव्य दूसरे द्रव्य में क्या कर सकता है? अत्यन्त अभाव का अर्थ क्या ? यही कि एक द्रव्य दूसरे



द्रव्य को छूता भी नहीं है। छूए तो अभाव नहीं रहे।''

**प्रश्न :** ''यदि आप ऐसा उपदेश देंगे तो लोग आलसी हो जायेंगे। जब उसके करने से कुछ होता ही नहीं तो कोई पुरुषार्थ क्यों करेगा ?''

**उत्तर :** ''क्रमबद्धपर्याय के निर्णय में ही सच्चा पुरुषार्थ है; क्योंकि क्रमबद्ध का निर्णय करने में ज्ञायक-स्वभाव पर दृष्टि जाती है। जिसप्रकार ज्ञायक में भव नहीं; उसीप्रकार क्रमबद्ध के निर्णय करने वाले को भी भव नहीं होते, एक-दो भव रहते हैं, वे भी ज्ञेय तरीके से रहते हैं।

अपनी मति में क्रमबद्ध की व्यवस्था को व्यवस्थित करना ही सच्चा पुरुषार्थ है।''

**प्रश्न :** ''पर्याय तो व्यवस्थित ही होने वाली है अर्थात् पुरुषार्थ की पर्याय तो जब उसके प्रगट होने का काल आएगा तभी प्रगट होगी – ऐसी स्थिति में अब करने क्या रह गया ?''

**उत्तर :** ''व्यवस्थित पर्याय है – ऐसा जाना कहाँ से ? व्यवस्थित पर्याय द्रव्य में है, तब तो द्रव्य के ऊपर ही दृष्टि करनी है। पर्याय के क्रम के ऊपर दृष्टि न करके, क्रमसरपर्याय जिसमें से प्रगट होती है, ऐसे द्रव्य सामान्य के ऊपर ही दृष्टि करनी है, क्योंकि उस पर दृष्टि करने में अनन्त पुरुषार्थ आ जाता है। क्रमबद्ध के सिद्धान्त से अकर्त्तापना सिद्ध होता है,

क्रम के समक्ष देखना नहीं।''

**प्रश्न :** ''क्रमबद्ध में करने के लिए क्या आया ?''

**उत्तर :** ''करना है कहाँ ? करने में तो कर्तृत्वबुद्धि आती है। करने की बुद्धि छूट जाए – यह क्रमबद्ध है। क्रमबद्ध में कर्त्तृत्वबुद्धि छूट जाती है। पर में तो कुछ कर सकता नहीं, अपने में भी जो होने वाला है, वही होता है अर्थात् अपने में भी जो होनेवाला है, वही होता है, उसका क्या करना ? राग में भी कर्त्तृत्वबुद्धि छूट गयी, भेद और पर्याय से भी दृष्टि हट गयी, तब क्रमबद्ध की प्रतीति हुई। क्रमबद्ध की प्रतीति में तो ज्ञाता-दृष्टा हो गया, निर्मल पर्याय करूँ – ऐसी बुद्धि भी छूट गयी, राग को करूँ – यह बात तो दूर रह गयी। अरे ! ज्ञान करूँ – यह बुद्धि भी छूट जाती है, कर्त्तृत्वबुद्धि भी छूट जाती है और अकेला ज्ञान रह जाता है। जिसे राग करना है, राग में अटकना है, उसे क्रमबद्ध की बात जमी ही नहीं। राग को करना, राग को छोड़ना – यह भी आत्मा में नहीं है। आत्मा तो अकेला ज्ञानस्वरूप है।

पर की पर्याय तो जो होनेवाली है, वह तो होती ही है, उसे मैं करूँ ही क्या ? और मेरे में जो राग आता है, उसे मैं क्या लाऊँ ? और मेरे में जो शुद्ध पर्याय आए, उसको करूँ, लाऊँ – ऐसे विकल्प से भी क्या ? अपनी पर्याय में से



होनेवाला राग और होनेवाली शुद्ध पर्याय उसको करने का विकल्प क्या ? राग और शुद्ध पर्याय के कर्तृत्व का विकल्प शुद्ध स्वभाव में है ही नहीं। अकर्त्तापना आ जाना ही मोक्षमार्ग का पुरुषार्थ है।''

**प्रश्न :** ''क्रमबद्धपर्याय की बात कहकर आप सिद्ध क्या करना चाहते हैं ?''

**उत्तर :** ''क्रमबद्ध के सिद्धान्त से मूल तो अकर्त्तापना सिद्ध करना है। जैनदर्शन अकर्त्तावादी है। आत्मा परद्रव्य का तो कर्त्ता है ही नहीं, राग का भी कर्त्ता नहीं और पर्याय का भी कर्त्ता नहीं। पर्याय अपने ही जन्मक्षण में अपने ही षट्कारक से स्वतंत्ररूपेण जो होने योग्य है वही होती है। परन्तु इस क्रमबद्ध का निर्णय पर्याय के लक्ष से नहीं होता। क्रमबद्ध का निर्णय करने जाए तो शुद्ध चैतन्य ज्ञायकधातु के ऊपर दृष्टि जाती है और तभी जानने वाली जो पर्याय प्रगट होती है, वह क्रमबद्धपर्याय को जानती है। क्रमबद्धपर्याय का निर्णय स्वभाव-सन्मुख वाले अनन्त पुरुषार्थपूर्वक होता है। क्रमबद्ध के निर्णय का तात्पर्य वीतरागता है और यह वीतरागता पर्याय में तभी प्रगट होती है जब वीतराग स्वभाव के ऊपर दृष्टि जाती है। समयसार गाथा ३२० में कहा है कि ज्ञान बंध-मोक्ष को कर्त्ता नहीं है, किन्तु जानता ही है। अहाहा ! मोक्ष को ज्ञान जानता है; मोक्ष का करता है – ऐसा नहीं कहा। अपने में होनेवाली क्रमसर पर्याय का कर्त्ता ऐसा

नहीं, किन्तु जानता है, गजब बात है।''

**प्रश्न :** ''जब कुछ करना ही नहीं है तो फिर आप आत्मा का अनुभव करने का, ज्ञायकस्वभाव के सन्मुख दृष्टि का उपदेश क्यों देते हैं ?''

**उत्तर :** ''हम कहाँ देते हैं उपदेश ? वाणी तो जड़ है, अत: जड़ के कारण निकलती है। परमपूज्य अमृतचन्द्राचार्य देव आत्मख्याति के अन्त में लिखते हैं कि टीका हमने लिखी है – ऐसा जानकर मोह में मत नाचो। यह तो अक्षरों और शब्दों की परिणति है, हमारी नहीं। भाषा तो हमारी है ही नहीं, समझाने के विकल्प को भी मात्र जानते हैं और वह भी व्यवहार से, निश्चय से तो हम मात्र अपने को जानते हैं।''

**प्रश्न :** ''सभी गुणों का कार्य व्यवस्थित ही है तो फिर पुरुषार्थ करना भी रहता नहीं ?''

**उत्तर :** ''जिसको क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में पुरुषार्थ भासित नहीं होता, उसको व्यवस्थितपना बैठा ही कहाँ है ?''

**प्रश्न :** ''उसको व्यवस्थितपने का श्रद्धान नहीं हुआ तो उसका वैसा परिणमन भी तो व्यवस्थित ही है। वह व्यवस्थितपने का निर्णय नहीं कर सका, यह बात भी तो व्यवस्थित ही है। ऐसी दशा में निर्णय करने की कथा करना व्यर्थ ही है ?''

**उत्तर :** ''उसका परिणमन व्यवस्थित ही है – ऐसी



उसे खबर कब है ? परिणमन व्यवस्थित है – ऐसा सर्वज्ञ ने कहा है, परन्तु उसे सर्वज्ञ का निर्णय ही कहाँ है ? प्रथम यह सर्वज्ञ का निर्णय तो करे ? पश्चात् उसे व्यवस्थित की खबर पड़े।''

**प्रश्न :** ''व्यवस्थित परिणमनशील वस्तु है, इसप्रकार भगवान के कथन की श्रद्धा उसे है ?''

**उत्तर :** ''नहीं, सर्वज्ञ भगवान का सच्चा निर्णय उसको कहाँ है ? पहले सर्वज्ञ का निश्चय हुए बिना व्यवस्थित का निर्णय कहाँ से आया ? मात्र ज्ञानी की बातें सुन-सुनकर वैसा-वैसा ही कहे तो इससे काम नहीं चलेगा, प्रथम सर्वज्ञ का निर्णय तो करो। द्रव्य का निर्णय किये बिना सर्वज्ञ का निर्णय वास्तव में हो ही नहीं सकता।''

**प्रश्न :** ''आप समझाते भी जाते हैं और कहते भी जाते हैं कि हम कहाँ समझाते हैं ?''

**उत्तर :** ''कौन समझाता है ? कहा न कि भाषा के कारण भाषा होती है, विकल्प के कारण विकल्प होता है और उसी समय भाषा और विकल्प का ज्ञान अपने कारण होता है। उसमें हमारा कर्त्तापन कहाँ रहा ?''

**प्रश्न :** ''इसीलिए तो लोग कहते हैं कि आपकी करनी और कथनी में अन्तर है ?''

**उत्तर :** ''(अत्यन्त गम्भीर होकर) वस्तुस्वरूप ऐसा है,

हम क्या करें ? जैसा श्रद्धान, ज्ञान और वचन है, वैसा चारित्र भी होना चाहिए, वह अभी नहीं है; पर श्रद्धा में फेर नहीं है। करनी और कथनी का यह अन्तर तो है ही। पर यह अन्तर तो क्षायिक सम्यग्दृष्टि भरतादि चक्रवर्तियों के भी था। चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सभी ज्ञानियों के होता है – इसमें हम क्या करें ?''

**प्रश्न :** ''यदि यह श्रद्धा और चारित्र का भेद मिट जावे तो बहुत अच्छा रहे ?''

**उत्तर :** ''मिट जाए तो क्या कहना ? हम भी तो निरन्तर यही भावना भाते हैं, पर ऋषभदेव के ८३ लाख पूर्व तक चारित्रदोष रहा था। एक गुण दूसरे गुण में दोष उत्पन्न नहीं करता – यह महासिद्धान्त है, अन्यथा सम्यग्दर्शन नहीं हो सकता। चारित्र और वीर्य में दोष है, परन्तु सम्यग्दर्शन में दोष नहीं है।''

अन्त में चर्चा में बैठे हुए हजारों लोगों को सम्बोधित करते हुए स्वामीजी बोले – ''आज अच्छी चर्चा रही, पण्डितजी ने अच्छे प्रश्न किये।''

''क्रमबद्ध तो बापू ! जैनदर्शन का मस्तक है, जैनदर्शन की आँख है, वस्तुस्वभाव की मर्यादा है। इसे समझना और निस्सन्देह होना बड़ी अलौकिक बात है। आज भले ही इसे कम लोग समझते हों, पर सुनते हजारों लोग बड़े प्रेम से हैं। सुने भाई ! सुनें, सभी सुनें, पढ़ें और सबका कल्याण हो।'' – कहते हुए उन्होंने अपनी बात समाप्त की।



## प्रस्तुत संस्करण की कीमत कम करने वाले दातारों की सूची

| | |
|---|---|
| १. श्री माँगीलाल मिट्ठालालजी व्हौरा, भीण्डर | ५०१.०० |
| २. श्री महेन्द्रभाई मणिलाल भालाणी, मुंबई | ५०१.०० |
| ३. श्रीमती कुसुम जैन ध.प. श्री विमलकुमारजी जैन 'नीरू केमिकल्स', दिल्ली | ५०१.०० |
| ४. श्री झमकलालजी बड़जात्या, रतलाम | ५०१.०० |
| ५. श्रीमती श्रीकांताबाई ध.प.श्री पूनमचंदजी छाबड़ा,इंदौर | २५१.०० |
| ६. ब्र. कुसुमताई पाटील, बाहुबली (कुम्भोज) | २५१.०० |
| ७. श्री शान्तिनाथजी सोनाज, अकलूज | २५१.०० |
| ८. स्व. श्री बाबूलाल तोतारामजी जैन, भुसावल | २५१.०० |
| ९. श्रीमती रश्मिदेवी वीरेशजी कासलीवाल, सूरत | २५१.०० |
| १०. श्रीमती पतासीदेवी इन्द्रचन्दजी पाटनी, लाड़नूँ | २५१.०० |
| ११. श्री प्रकाशचंदजी जैन, महरौली | २५०.०० |
| १२. श्री धर्मेन्द्रकुमारजी नवीनकुमारजी जैन, दिल्ली | २००.०० |
| १३. श्रीमती नीलू ध.प.श्री राजेश मनोहरलालजी काला, इंदौर | २०१.०० |
| १४. श्रीमती पानादेवी मोहनलालजी सेठी, गोहाटी | १५१.०० |
| १५. स्व. धापूदेवी ध.प.स्व. ताराचंदजी गंगवाल, जयपुर की स्मृति में | १५१.०० |
| **कुल राशि** | **४४६३.००** |

## लेखक के महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

समयसार (ज्ञायकभाव प्रबोधिनी)
समयसार अनुशीलन भाग-१
समयसार अनुशीलन भाग-२
समयसार अनुशीलन भाग-३
समयसार अनुशीलन भाग-४
समयसार अनुशीलन भाग-५
समयसार का सार
प्रवचनसार का सार
प्रवचनसार अनुशीलन भाग-१
पं. टोडरमल व्यक्तित्व और कर्तृत्व
परमभावप्रकाशक नयचक्र
चिन्तन की गहराइयाँ
महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ
धर्म के दशलक्षण
क्रमबद्धपर्याय
बिखरे मोती
सत्य की खोज
अध्यात्मनवनीत
छहढाला का सार
आप कुछ भी कहो
आत्मा ही है शरण
सुक्ति-सुधा
बारह भावना : एक अनुशीलन
दृष्टि का विषय
गागर में सागर
पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव
णमोकार महामंत्र : एक अनु.
रक्षाबन्धन और दीपावली
आ.कुंदकुंद और उनके पंचपरमागम
युगपुरुष कानजीस्वामी
वीतराग-विज्ञान प्रशिक्षण निर्देशिका
पश्चात्ताप
मैं कौन हूँ
निमित्तोपादान
अहिंसा : महावीर की दृष्टि में
मैं स्वयं भगवान हूँ
रीति-नीति
शाकाहार
तीर्थंकर भगवान महावीर
चैतन्य चमत्कार
गोली का जवाब गाली से भी नहीं
गोम्मटेश्वर बाहुबली
वीतरागी व्यक्तित्व : भगवान महावीर
अनेकान्त और स्याद्वाद
शाश्वत तीर्थधाम सम्मेदशिखर
बिन्दु में सिन्धु
बारह भावना एवं जिनेंद्र वंदना
कुंदकुंदशतक पद्यानुवाद
शुद्धात्मशतक पद्यानुवाद
समयसार पद्यानुवाद
योगसार पद्यानुवाद
समयसार कलश पद्यानुवाद
प्रवचनसार पद्यानुवाद
द्रव्यसंग्रह पद्यानुवाद
अष्टपाहुड़ पद्यानुवाद
अर्चना जेबी
कुंदकुंदशतक (अर्थ सहित)
शुद्धात्मशतक (अर्थ सहित)
बालबोध पाठमाला भाग-२ व ३
वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-१
वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-२
वीतराग-विज्ञान पाठमाला भाग-३
तत्त्वज्ञान पाठमाला भाग-१ व २